MIRANDA HOUSE UNIVERSITY OF DELHI
स्वाध्यायान्न प्रमदितव्यम्

मिराण्डा हाउस

हिन्दी विभाग

अन्तर्महाविद्यालयी पत्रिका

पहचान

विशेष: संकट, संघर्ष और साहित्य

वीणावादिनी वर दे।
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे।
काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे!
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे!
वर दे वीणावादिनी वर दे।

(सूर्यकांत त्रिपाठी निराला)

संदेश -

हिंदी विभाग की अन्तर्महाविद्यालयी वार्षिक पत्रिका 'पहचान' के माध्यम से हम विश्वविद्यालय में मौजूद साहित्यिक प्रतिभा की मौजूदगी को महसूस कर सकते हैं। हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं की भीड़ में महाविद्यालयी स्तर पर यह हस्तलिखित पत्रिका एक नए परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करती है। इस पत्रिका ने अपने नाम के अनुरूप अपनी अस्मिता को कायम रखा है। मुझे खुशी है हिंदी विभाग के सभी सदस्य छात्राओं की रचनात्मक प्रतिभा को पहचान कर उन्हें सक्रिय बनाए रखते हैं। साथ ही उनके समग्र विकास के लिए आवश्यक परामर्श और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। महाविद्यालय की पहली प्राचार्या सुश्री वेदा ठाकुर दास की उक्ति याद आती है- 'मैं 1 मई 1948 को अपनी ड्यूटी में शामिल हो गयी थी। जादूगरों की तरह मजदूरों ने ईंट पर ईंट फेंकी और रात भर में बड़ी दीवारें खड़ी हो गयी।' छात्राओं की उल्लिखित लेखनी को देख मुझे उसी जादुई अहसास और चमत्कार का अनुभव होता है कि नयी पीढ़ी किस तरह अपनी विरासत को बनाए हुए है। यह भी सच है कि मिरांडा हाउस समुदाय के प्रत्येक सदस्य की उत्कृष्टता, लोकतांत्रिक निर्णय लेने और सामूहिक ज्ञान की ओर प्रगतिशील व अग्रसर होने की भावना को बनाए रखने की निरन्तर और जोशीली प्रतिबद्धता ही मिरांडा हाउस का प्रतिबिम्बित्व करती है।

ऐसे में वैश्विक महामारी के इस

कठिन समय में 'पहचान' के इस उत्कृष्ट संस्करण 'संकट, संघर्ष और साहित्य' को सामने लाने में मैं संपादक कविता भाटिया को हार्दिक बधाई देती हूँ। अपने विद्वतापूर्ण, व्यावहारिक और रचनात्मक योगदान के लिए योगदानकर्ता भी प्रशंसा और बधाई के पात्र हैं।

समसामयिक मुद्दों और ज्वलन्त प्रश्नों को सामने लाने में 'पहचान' ने जो पहचान बनाई है, वह निरन्तर कायम रहे। मैं पत्रिका के सुनहले भविष्य और निर्बाध प्रकाशन की कामना करती हूँ।

अनेक शुभकामनाएँ

डॉ. विजयालक्ष्मी नंदा
(कार्यवाहक प्राचार्या)
मिरांडा हाउस

अपनी बात_

अहे! निष्ठुर परिवर्तन
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
अहे दुर्जेय विश्वजित!
जगत का अविरत हृदकंपन
तुम्हारा ही भयसूचन!

पल-पल परिवर्तित प्रकृति हमारे सम्मुख नए-नए रूपों में उपस्थित होती है। निर्मम परिवर्तन की विनाशकारी सत्ता का सामना करने की हिम्मत किसी में नहीं है। उसकी निर्दयी व निर्मम शक्ति जन्म को मृत्यु, स्मित व आनन्द को अश्रु और दुख में परिणत कर देती है। पिछले एक वर्ष से हम कोरोना जैसी वैश्विक महामारी की त्रासदी का सामना कर रहे हैं। कभी न सोचे, कभी न देखे इस समय ने एकाएक जीवन की तस्वीर ही बदल दी। उदासी, भय व दहशत तो उभरी ही साथ ही लॉकडाउन, आइसोलेशन, क्वारंटीन, सोशल डिस्टेंसिंग जैसे शब्दों के गहरे अर्थों से भी परिचित हुए। तपती धूप, कंकरीली सड़क, टूटी चप्पलें असहनीय भूख, जिंदगी को गट्ठर की तरह खुद ही ढोते और मौत का तांडव भी देखा। शिक्षा, खान-पान, रहन-सहन, व्यवसाय, मनोरंजन सब कुछ बदल गया। इस आपदा ने यह भी सिद्ध किया कि अभिमानी मनुष्य की प्रकृति पर विजय पाने की लालसा अन्ततः उसे अवश्य ही उसके वजूद और उसके अहंकार का वास्तविक अहसास करा देती है।

ऐसे समय में आभासी कही जाने वाली दुनिया हमारे जीवन का आधार बनी। आदमी की 'इंसानियत' की मिसाल भी ऐसे विकट समय में सामने आयी। कभी अलबेयर कामू के 'प्लेग' उपन्यास को पढ़कर जाना था कि महामारी का हमला कितना भयानक और जानलेवा हो सकता है। उस वक्त जो सिहरन और दहशत महसूस की थी, मुझे याद है, उसे पढ़कर कई रातें मैंने बिना सोये, बेचैनी में काटी थी, उस दहशत को वर्तमान हालात में साक्षात जिया और भोगा। - यातना को सहते-भोगते भय के इस अटाटोप में उम्मीद की किरण शेष है ... । स्वयं कामू का कथन है - 'किसी भी मुश्किल दौर में सबसे जरूरी चीज होती है इँसान से प्यार करना' - यह वाक्य आज तक मनोमस्तिष्क में गूँजता है। यह सच है 'भविष्य अनिश्चित है' और समाज के नवनिर्माण की चुनौती भी सामने खड़ी है पर 'सब कुछ नहीं होगा नष्ट / कुछ तो बचा ही रहेगा' की उम्मीद कायम है

'पहचान' के इस अंक की रचनाओं में सत्ता की क्रूरतापूर्ण स्थिति हो या पितृसत्तात्मक व्यवस्था का दंश झेलती स्त्री, हाशिए के समाज की पीड़ा हो अथवा नए संचार माध्यमों के फैलाव से उपजी नयी मानसिकता। आपदा के बीच उम्मीद की टिमटिमाती लौ लिए विद्यार्थियों ने सभी विषयों पर बेबाकी से अपने विचार व्यक्त किए हैं। जब जिंदगी घरों में कैद हो गयी थी तब साहित्य और सिनेमा ने जीने का नया संबल दिया। विद्यार्थियों ने साहित्यिक रचनाओं और कुछ लघु फिल्मों पर नव दृष्टिकोण से विचार करते हुए अपनी नयी सोच और रचनात्मकता का परिचय दिया है। संकट के समय साहित्य ही जिजीविषा

बनाए रखते हुए संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।
इन नए रचनाकारों का विज़न बहुत व्यापक है। इनकी संकल्पशक्ति 'दिया जलाना कब मना है...' का विश्वास भरा स्वर लिए हुए है।

इस वर्ष आरंभ में सामग्री संकलन में कुछ कठिनाई आयी, परन्तु निष्ठावान छात्राओं के प्रयास और सहयोग से कार्य सुचारू रूप से संपन्न हो पाया। उन सभी को मेरा स्नेहाशीष! मैं महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. विजयालक्ष्मी नंदा के सहयोग व स्नेहशीलता के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही मेरे सभी विभागीय साथियों का विशेष धन्यवाद, जो हर विपरीत परिस्थिति में हमारे साथ खड़े हैं। सच है, किसी भी कार्य की सफलता के पीछे समूह का संबल बड़ी भूमिका अदा करता है। 'पहचान' के इस अंक के माध्यम से हमारी कामना है कि वैश्विक आपदा का यह दौर जल्द ही बीत जाय और

है अभी तो चाह बाकी
और उर के द्वार पर देखो
मचलता ज्वार हँसने का
शुभे! बाकी
जिंदगी तबाह हो नहीं,
कराह और आह हो नहीं!
हँसी, सफेद दूधिया हँसी
हरेक आदमी के पास हो
सुखी भविष्य की
नवीन आस हो! (महेन्द्र भटनागर)

कविता

पहचान

(मिरांडा हाउस, हिंदी विभाग की वार्षिकी)

अंक – 9.
अप्रैल 2021

संपादक
डॉ. कविता भाटिया

सोच विचार — पृष्ठ

- सबसे ज्यादा नज़र अंदाज... 6.
- श्रृंगार किसके लिए ? 12.
- जहाँ मिले ज़िंदगी... 24.
- रुकी रुकी-सी ज़िंदगी 29.
- लॉकडाउन और स्त्री 37.
- लॉकडाउन और बच्चे 44.

कविताएँ

- अपेक्षाओं का बोझ 16.
- शर्मसार इंसानियत 27.
- सवाल 42.
- चाह 43.
- बचपन पर बेड़ियाँ 47.

कहानी

- गॉड फादर 18.
- नूर 32.

सहयोग

- पायल
- प्रियंका चौधरी
  (तृतीय वर्ष)
- अनुष्का यादव
- आकृति सिंह राठौर
- अंजलि
  (द्वितीय वर्ष)
- सिमरन
  (बी०ए० प्रोग्राम द्वितीय वर्ष)
- निहारिका शर्मा
  (पूर्व छात्रा)

पुस्तक समीक्षा — पृष्ठ

- परदा ही आबरू का रखवाला — 49.
- भावना ही ज़िंदगी नहीं होती — 53.

फिल्म समीक्षा

- इश्क की एक अलग दास्तां — 58.
- अतीत के पन्नों से... — 61.

Campus : आसपास

- पर्यावरण की चिन्ता — 65.
- सिक्के — 68.

साहित्यिक गतिविधियाँ — 70.

साहित्य संसार — 73.

सबसे ज्यादा नज़रअंदाज...

रोजा लक्जमबर्ग कहती हैं, 'जिस दिन औरतों के श्रम का हिसाब होगा, इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी पकड़ी जाएगी।' रोजा यहाँ उन महिलाओं के सालों किए गए श्रम की बात कर रही हैं जिसका न कोई लेखा-जोखा है और न ही जिस श्रम का उचित मूल्य या क्रेडिट उन्हें दिया गया।

केरल राज्य की एक कहानी याद आती है। हाल ही की घटना है। एक नवीं कक्षा का लड़का है - अजुनाव सिंधु विनायला। उसने अपने पिता को माँ के संदर्भ में अक्सर कहते हुए सुना था 'ये तो सिर्फ एक हॉउस वाइफ है, ये कोई काम नहीं करती'। अजुनाव को पिता की बात समझ में नहीं आती थी क्योंकि उसने अपनी माँ को कभी आराम करते नहीं देखा था। अजुनाव ने अपनी माँ की दिन-चर्या पर एक पेंटिंग बनायी। इस पेंटिंग में एक औरत अलग-अलग तरह के घरेलू कार्य करती दिखती है। जैसे सब्जी खरीदते, बच्चे को नहलाते, गाय दुहते, पेड़ से नारियल तोड़ते, खाना पकाते, बर्तन धोते इत्यादि। इस पेंटिंग को केरल सरकार ने जेंडर बजट 2021 दस्तावेज का कवर बनाने के लिए चुना है। हो सके तो गूगल पर इस पेंटिंग को जरूर देखे। पता चलता है कि घर के सदस्यों से लेकर घर के मुखिया द्वारा गृहणियों के श्रम को जिस तरह से श्रम की श्रेणी से दरकिनार कर दिया जाता है, वह धोखाधड़ी से कम नहीं है।

गृहणी महिलाएँ घर के सभी सदस्यों की देखभाल के लिए जिम्मेदार मानी जाती हैं। बच्चे के टिफिन बनाने से लेकर बुजुर्गों की दवा तक का हिसाब

रखती है। हालांकि अवसरों की तलाश में शहरों की तरफ पलायन के कारण आजकल कई परिवार 'एकल परिवार' हो चुके हैं। पति-पत्नी दोनों घर से बाहर काम करने जाते हैं। ऐसे परिवारों में भी आम तौर पर पत्नी अपने ऑफिस के साथ-साथ घर की जिम्मेदारी उठाती दिखती है हमारे समाज का ताना-बाना ही ऐसा है कि केयर गिविंग यानि कि 'देखभाल' जैसा काम औरतों का काम समझा जाता है। इस मामले में जब शादी के संस्थान का दखल होता है तब ये सोच और अधिक सुदृढ़ होकर व्यवहार में आ जाती है। बेटियों की परवरिश ही इस तरह से की जाती है कि वे अपने आगे सदा दूसरों को रखें और उनकी देखभाल करें। समाज में लड़कों और लड़कियों के लिए अलग-अलग जेंडर रोलस यानि कि सामाजिक भूमिका तय कर रखी है। औरतों का कामकाजी होना उन्हें दी गयी 'छूट' की तरह देखा जाता है और घर के कामों में उनका निपुण होना एक आव-श्यक गुण की तरह।

कोरोना काल में हुए लंबे लॉकडाउन का समय महिलाओं के लिए पुरुषों की तुलना में ज्यादा मुश्किल रहा। समाज के जेंडर रोल के मुताबिक घरेलू काम और घर वालों की देखभाल का सारा दायित्व एकदम से उन पर आ गया। घर के लोगों का बाहर आना-जाना बंद होने के कारण चौबीसो घंटे लोग घर पर ही रहने लगे और ऐसे में महिलाओं का घर के लिए किया गया काम कई गुना बढ़ गया। ऑफिस जाने वाली महिलाओं के जीवन में जो घर और ऑफिस या उनके वर्कप्लेस के स्पेस की रेखा थी, वो मिट गयी। उन्हें दोनों जगह के काम मैनेज कर करने पड़े।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समिति (ILO) के अनुसार अवैतनिक देखभाल की परिभाषा है - घर या समुदाय के लोगों के सेहत, स्वास्थ्य, देखभाल के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया गया श्रम जिसके एवज में तनख्वाह नहीं दी जाती है। इसी संस्था की रिपोर्ट की मुताबिक भारत में महिलाएँ 351 मिनट प्रति दिन अवैतनिक देखभाल में लगाती हैं जबकि पुरुषों के लिए यह आंकडा 51 मिनट प्रति दिन का है।

अवैतनिक देखभाल जो कि जेंडर रोल्स के कारण मुख्यत: महिलाओं का बोझ बन जाता है उनके लिए कई संभावनाओं को नष्ट करता है। जैसे अपने लिए निकाला गया समय, अपनी पढ़ाई-लिखाई, अपनी रुचियों को विकसित करने का मौका और रोजगार आदि का अवसर। लॉकडाउन में ऐसी कई घटनाएँ सामने आयी, जहाँ एक घर में अगर एक ही डिवाइस है तो वो डिवाइस फोन अथवा लैपटॉप घर के बेटे को प्रयोग करने देना प्राथमिकता माना गया। किसी मध्यवर्गीय परिवार में अगर पति-पत्नी दोनों को अपने काम के लिए इंटरनेट की आवश्यकता है और परिवार एक इंटरनेट कनेक्शन के आर्थिक खर्चे का भार उठा सकता है तो महिला को अपना काम और रूटिन बदलना पड़ा।

अगर हम भारत के ग्रामीण इलाकों की बात करें तो किसान शब्द सुनते ही हमारे मस्तिष्क में एक पुरुष खेतिहर का चेहरा सामने आ जाता है, जबकि खेतों में काम करने वाला एक बड़ा तबका महिलाओं का है। खेतिहर परिवार के बच्चे किसानी से होने वाली आमदनी को पिता की आमदनी के कॉलम में भरते हैं। महिलाओं द्वारा खेतों, पशुओं और घर पर किया गया श्रम कहीं दर्ज नहीं किया जाता। FAO की एक रिपोर्ट के मुताबिक प्रगतिशील देशों में आर्थिक रूप से सक्रिय

महिलाएँ कृषि क्षेत्र से आती है। इंडियन ह्यूमन डेवलपमेंट सर्वे के अनुसार भारत विश्व के उन 15 देशों में से एक है, जहाँ परम्परागत नियम महिलाओं को पुरूषों के बराबर भू स्वामित्व अधिकार प्राप्त करने से रोकते हैं। हालांकि यह विरोधाभास ही है कि ये वही देश है, जो संयुक्त राष्ट्र संघ की साल 2015 सस्टेनेबल डिवेलपमेंट गोलस में सम्मिलित हुए हैं। जिसका उद्देश्य महिलाओं को भू-अधिकार देकर भू स्वामित्व में उनकी हिस्सेदारी बढ़ाना है।

महिलाओं द्वारा घर में और घर के लिए किया गया काम जैसे खाना पकाना, झाड़ू-साफ-सफाई इत्यादि अक्सर गैर जरूरी माना जाता है। इतना गैर जरूरी कि उसका हिसाब देश की जीडीपी और रोजगार के मैट्रिक्स के अंदर भी नहीं रखा जाता। - क्योंकि ये काम बाज़ार की नज़र में कोई नया उत्पाद लेकर नहीं आते। अर्थशास्त्र इसे नज़रअंदाज कर देता है। इसलिए भारतीय महिलाओं द्वारा किया गया अवैतनिक देखभाल जिसमें उनके दिन का बड़ा हिस्सा खर्च होता है, एक अहम काम की तरह नहीं बल्कि परिवार के प्रति उनके फर्ज़ या बाध्यता की तरह देखा जाता है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में 49% महिलाएँ हैं और 1.3 बिलियन लोगों के काम का लेखाजोखा जीडीपी का हिस्सा नहीं बनता। समाज के जेंडर रोलस इतने रूढ़िवादी हैं, कि घर के बाहर काम करने वाली महिलाओं को 'घर का काम कौन करेगा' का जवाब ढूंढना पड़ता है साथ ही इसका खामियाजा भी उठाना पड़ता है - ऐसा पुरुषों के साथ नहीं होता।

पिछले दिनों मैंने एक लघु फिल्म देखी - 'घर की मुर्गी'। यह फिल्म यूट्यूब पर उपलब्ध है। फिल्म की कहानी ऐसी ही एक गृहिणी के बारे में है जो घर के साथ एक ब्यूटी पार्लर भी चलाती है। सास-ससुर

को दवाई देना, पति भूल जाए तो उसे उसकी गाड़ी की चाबी देना, बच्चों को स्कूल बस तक छोड़ना जैसे आम स्त्रियों की तरह काम करते हुए वह अपने लिए थोड़ा समय निकालकर पार्लर में देती है। उसकी पार्लर की कमाई से पति को कोई मतलब नहीं क्योंकि उसकी नज़र में यह कोई 'बड़ा काम' नहीं है। वह औरत एक दिन थककर पति से एक महीने की छुट्टी मांगती है। पति और घरवाले आश्चर्य और झल्लाहट के बाद उसकी बात मान लेते है। एक दर्शक के तौर पर जिसने अपनी मांओं, मौसियों को ऐसे ही घर पर खपते देखा है, मैं बड़ी उत्साहित थी। मुझे लगा वह स्त्री छुट्टी पर जाएगी और उसे जाना चाहिए। लेकिन घरवालों को अपनी गलती का अहसास होता है और वह कहीं नहीं जाती। अगले दिन पति बच्चों को स्कूल छोड़ता नजर आता है। मैं फिर भी असन्तुष्ट थी। क्योंकि असली जीवन फिल्म जितनी रफ्तार और हैप्पी एंडिंग से नहीं चलता। महिलाओं को अपने लिए समय निकालने में भी ग्लानि या परिवार के प्रति जिम्मेदारी का बोध इसलिए होता है क्योंकि बचपन से ही लड़कियों की परवरिश वैसी की जाती है। खासकर तब जब वह परिवार फिल्म में दिखाए परिवार की तरह एक समृद्ध परिवार है जो खर्चे के तौर पर माँ की गैर हाज़िरी में वही सारे काम करने के लिए 50 हजार रुपये तक खर्चने की आर्थिक क्षमता रखता है। ऐसे में उस महिला का बिना छुट्टी मनाए लौट आना मुझे उन आर्थिक रूप से कमजोर तबकों की याद दिलाता है जहाँ परिवार महिलाओं के अवैतनिक देखभाल के लिए उन्हें उचित तनख्वाह नहीं दे सकता है। इसलिए

इसका सार्वभौम उपाय है समाज द्वारा स्थापित जेंडर रोल्स को तोड़ा जाना। जहाँ परिवार के सभी सदस्य घर के कामों के प्रति बराबर जवाबदेह हों। जब खाना खाकर किसी गाँव की खाट पर या किसी महानगर के डाइनिंग टेबल पर जूठी थाली इसलिए छोड़कर ना उठ जाए क्योंकि ये तो महिलाओं के हिस्से का काम है।

• ऐश्वर्य अमृत विजयराज
(दर्शन शास्त्र विशेष, तृतीय वर्ष)

श्रृंगार किसके लिए ?

मैंने आज एक अत्यन्त सुंदर स्त्री को देखा, जिसने श्रृंगार किया हुआ था। माथे पर छोटी सी बिंदी, मांग में सिंदूर जो उसके सुंदर चेहरे की शोभा बढ़ा रहा था। इस स्त्री का वैवाहिक जीवन कष्टदायक रहा। शादी के कई साल बाद वह अपने पति से अलग हो गयी। जिस बंधन में सदैव मार-पीट ही मिली, जहाँ कभी सम्मान नहीं मिला तो उसने अपने शेष जीवन को जीने के लिए उस आदमी से अलग रहना ही बेहतर समझा। फिर क्या होना था? यह तो स्वाभाविक है जब कोई स्त्री अपने लिए आवाज उठाती है तो वो आवाजें भी उसके खिलाफ हो जाती है, जो कभी उसके साथ थी। खैर! एक कठिन जीवन यात्रा के बाद भी वह सजना-संवरना नहीं छोड़ती। अब वो खुद के लिए सजती है, जिस समाज ने उसे अब तक केवल पति के लिए सजना सिखाया था पर आज वो खुद की आत्मा के लिए संवरती है, न कि उन लोगों के लिए जो सजना-संवरना उसका पत्नी धर्म मानते थे।
हम ऐसे समाज में रहते हैं जहाँ हमें बचपन से ही कुछ ऐसी बातें सिखायी जाती है जो पितृसत्ता को बढ़ावा देती हैं। शादी से पहले कोई लड़की बिंदी या लिपस्टिक लगाती है तो उसको डांटा जाता है, या दकियानूस लोग अश्लील भी मान लेते है। तब समाज के कुछ पितृसत्तात्मक लोग उसे आकर समझाते है कि औरत को श्रृंगार केवल उसके पति के लिए ही करना चाहिए। शादी से पहले यह सजना-संवरना शोभा नहीं देता।

दूसरी श्रेणी में आती हैं 'शादीशुदा लड़कियाँ'। अगर कोई औरत श्रृंगार न करे, चूड़ी, मंगलसूत्र, बिछुए न पहने तो फिर यही लोग आकर उसे पाठ पढ़ाते हैं इस वक्त वो वाक्य को बदलकर बोलते हैं, लेकिन वाक्य का मूल भाव समान रहता है। (पति के लिए हमेशा सजना चाहिए) तीसरी श्रेणी में वे औरतें हैं, जिनके पति का देहान्त हो चुका हो या जो अपने पति से अलग रह रही हों। यदि औरतें ढंग से कपड़े भी पहन लें या थोड़ा सज-संवर लें तो समाज उन पर फब्तियाँ कसने से बाज नहीं आता। यही नहीं उस पर लांछन लगा चरित्रहीन भी कहा जा सकता है। — और फिर से उस मूल बात को समझाता है कि तुम्हारा पति तुम्हारे साथ नहीं है तो तुम किसके लिए संवरती हो?

अगर पति शब्द पर गौर करें तो वह पितृसत्तात्मक समाज का प्रतीक है। जिसका अर्थ है - 'सर्वोपरि' अथवा 'उच्च'। जो अपने साथी को नियंत्रण में रखता है, वह तानाशाह है। वैवाहिक प्रथा के अनुसार दो व्यक्तियों को एक बंधन में बाँधा जाता है जिन्हें पति-पत्नी कहा जाता है। जिसमें पति को 'स्वामी' व 'परमेश्वर' का दर्जा दिया जाता है। दूसरी ओर वह पत्नी 'धर्मपत्नी' कहलाती है जो जीवन भर उसकी आज्ञाकारिणी बनकर रहे। नारी का जीवन सिर्फ इतना नहीं, जितना हम सोचते हैं। अपितु वह खुद प्रकृति है, जन्मदात्री है, सृजनकर्ता है। पर जन्म लेते ही नारी का अस्तित्व उसके पिता के हाथों में सौंप दिया जाता है, शादी के बाद उसके पति को, माँ बनने के बाद वह स्वयं ही अपना अस्तित्व अपने बच्चों को सौंप देती है। लेकिन वो खुद क्या करती है? त्याग। अपने अस्तित्व

का। क्या औरत कभी खुद के लिए जीती है? इस समाज ने महिलाओं की मानसिकता को ही ऐसा बना दिया है कि वो साँसें चलते रहने को ही अपना जीवन मान लेती है

आज हम चारों ओर पाते है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति सुंदर दिखना चाहता है और सुंदरता पुरुषों से ज्यादा स्त्रियों की महत्वपूर्ण हो जाती है। बॉडी शेमिंग की शुरूआत हमारे घर से ही शुरू हो जाती है।

एक बच्चे को छोटी उम्र से ही खाने पर रोक लगायी जाती है क्योंकि वह मोटे हो जायेंगे। सुंदर दिखने की इच्छा आज इतनी अधिक है कई मनुष्य अपने आपको बदसूरत मान अवसाद के शिकार हो जाते है। सुंदरता के मापदंड पितृसत्ता की ही उपज है। हम टेलीविजन देख रहे है तो संभव है हमारी नजर उस प्रोडक्ट पर अवश्य पड़ती है जो चेहरे को खूबसूरत बनाए और हम चाहकर भी स्वयं को रोक नहीं पाते क्योंकि धारणा ही ऐसी है कि सुंदर चेहरा ही समाज में सम्मान दिला सकता है। कोई कंपनी उत्पादन ही उस वस्तु का करती है जिसकी

बाजारी मांग अत्यधिक हो और बाजार उन लोगों से भरा हुआ हो जो चौबीस घंटे अपने चेहरे, अपने रंग को लेकर चिंतित रहते हो।

सुंदरता का यह पैमाना स्त्रियों के लिए बहुत दुखदायी है। हम एक काली, मोटी लड़की को कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, उसे गोरी त्वचा वाली लड़की से कमतर आँका जाता है। जबकि स्त्री कोई वस्तु नहीं है कि हम उसका मोल भाव करके, नाप तौल करके खरीदें। जैसा कि आज के वैवाहिक विज्ञापनों में देखा जाता है। हर स्त्री में अपना कौशल और प्रतिभा के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत गुण भी होते हैं, जिन्हें देखा जाना चाहिए। यह समाज कैसे तय कर सकता है कि एक शादीशुदा औरत कैसे रहेगी? एक विधवा कैसे जिएगी? सुंदरता का जाल औरत को पूरी तरह जकड़ कर रखता है। आज हम हर क्षेत्र में महिलाओं का योगदान पुरुषों से कम करके देखते हैं जबकि सच इसके विपरीत है। पितृ-सत्तात्मक समाज सुंदरता के पैमाने तय करने वाला कौन होता है? इन बंधनों और पैमानों के कारण ही वह स्त्रियों को आगे बढ़ने नहीं देता। जिस दिन औरत अपने साथ हुए इस अन्याय का हिसाब मांगेगी उस दिन सारे कानून फेल होंगे।

• भावना शर्मा
(बी॰ ए॰ प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष)

अपेक्षाओं का बोझ

आस लगायी नन्हीं आँखों से
ख्वाबों का बिछौना तो दे दिया
पर बताया नहीं, उस पर सोने की
इजाजत नहीं,
बस दिल बहलाने को खिलौना दे दिया ।

कहते रहे इज़्ज़त कमाना, शोहरत कमाना,
जिंदगी में कुछ बनकर दिखाना,
पर बताया नहीं अपने ख्वाबों को नहीं
किसी और के सपनों को हकीकत बनाना ।

उस दिल में जो सपने थे,
उनका तो जिक्र तक न हुआ
जो ख्वाब जिंदगी बन गए थे,
उनकी अहमियत का किसी को
अंदाज़ तक न हुआ ।
फैसला कर दिया जिंदगी का
ना पूछा हमसे ना बताया कुछ
कुछ गलती की थी तो बता देते,
ना समझा हमें ना
समझाया कुछ ।

जिंदगी हमारी है
एक मौका हमें भी दो
गिर जाए तो सँभाल लेना,
आखिर हमारे अपने ही तो हो।

सिर्फ एक मौका तो दे दीजिए,
अपनी ख्वाहिशें मुकम्मल करने का
बचपन से जो ख़्वाब बुने
उनमें एक ऊँची उड़ान भरने का।

• चारुल
(बी॰ एस॰ सी, गणित
प्रथम वर्ष)

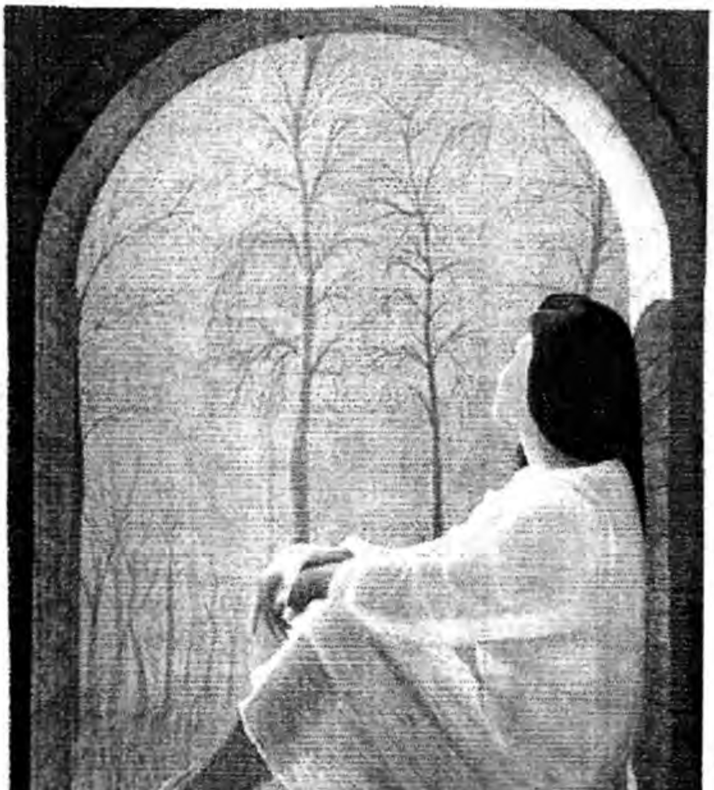

गॉड फादर

— कहानी

डॉ० प्रवीन खुले आसमान के नीचे बैठा किन्हीं पुरानी यादों में डूबा था तभी उसकी मित्र अपराजिता ने आकर उसे हिला दिया और बोली-" कहाँ खोये हो?" प्रवीन को लगा जैसे किसी ने उसे सुंदर सपने से उठाकर हकीकत की कठोर भूमि पर बैठा दिया हो।

प्रवीन को अमेरिका आए यह छह वर्ष हैं। डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करके अब वह अच्छा डॉक्टर बन गया है अपराजिता उसकी सच्ची दोस्त है, जो उसके जीवन की हर घटना से वाकिफ है।

- " कुछ नहीं! बस माँ की याद आ रही थी..." कितना समय हो गया माँ से मिले हुए। जहाँ मैं माँ के बगैर कुछ दिन भी नहीं रह सकता, आज वही पूरे छह साल गुजर गए हैं।

- बस यों ही कभी वीडियो कॉल पर बात हो जाती है, पर उस ऑनलाइन बातचीत में वह 'अहसास' नहीं मिल पाता जो वास्तविकता में होता है।

माँ बताती थी कि मेरा पूरा परिवार पिताजी, दादा-दादी और चाचाजी एक साथ फिल्म देखने जा रहे थे उनकी कार का रास्ते में एक्सीडेंट हो गया। उन्हें कोई समय से अस्पताल नहीं ले गया और उन सबकी जान चली गयी। पापा ने तो अस्पताल में दम तोड़ा क्योंकि वहाँ भी डॉक्टर इलाज से पहले फॉरमेलिटी में उलझे रहे। उस दिन माँ उन सबके साथ नहीं गयी थी क्योंकि मैं उनके पेट में था इसीलिए आज मैं जीवित हूं - पर अपनी उसी माँ से दूर। उसी दिन माँ ने निश्चय कर लिया था कि वह मुझे एक बड़ा डॉक्टर बनाएगी।

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और मौसम में एक अजीब -सी उदासी छायी थी। बारिश होने ही वाली थी। तभी अपराजिता ने प्रवीन को झकझोरते हुए कहा - 'चलो अंदर चलो। लगता है तेज बारिश होगी।'

दोनों उठकर अंदर चले जाते हैं।

- 'तुम कुछ दिनों के लिए माँ के पास क्यों नहीं चले जाते अब तो तुमने उनका सपना भी पूरा कर दिया है।'

- 'नहीं अपराजिता अभी नहीं, मैंने तय किया है जब तक मेरा नाम मैगजीन के पहले पेज पर नहीं आता, तब तक मैं माँ से नहीं मिलूँगा और अभी अपने और माँ के भविष्य के लिए ढेर सारे पैसे भी तो कमा लूं।' — - प्रवीन ने उदास स्वर में उत्तर दिया।

कुछ देर बाद प्रवीन का फोन बज उठता है, संयोग फोन माँ का ही था। कुछ रुआँसे स्वर में माँ बोली - 'बेटा तुम कब आओगे? आज तेरी बहुत याद आ रही थी। अब मुझे और मत तरसा, तेरे अलावा मेरा और है ही कौन? जो मेरा हाल-चाल पूछ सके।'

- 'माँ तुम चिन्ता न करो। मैं जल्द ही तुम्हारे पास आऊँगा। इन दिनों कुछ ज्यादा व्यस्त हूँ। तुम अपना ख्याल रखो। अच्छा माँ अब मुझे अस्पताल जाना है, फोन रखता हूँ। मैं तुम्हें रात में फिर फोन करता हूँ।'

पूरे विश्व में कोरोना नामक महामारी जोरों से फैल रही है। मरीजों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। चीन से शुरू होकर देखते-देखते यह महामारी पूरे संसार में हवा में जहर की तरह फैल गई।

भारत में सुरक्षा व्यवस्था के रूप में लॉकडाउन लगा दिया गया है। देश-विदेशों की जहाजी यात्रा को भी बन्द कर दिया गया है।

कोई भी प्रवासी अब भारत नहीं आ सकता। इस खबर को सुनते ही प्रवीन के चेहरे के रंग उड़ गए। अब माँ का ध्यान कौन रखेगा? वह माँ के पास कैसे पहुँचेगा? माँ तो उसका कब से इन्तज़ार कर रही है? हाँलाकि उनका नौकर बंटी, सालों से माँ के साथ है जो उनकी पूरी देख-भाल करता है।

प्रवीन माँ को फोन लगाता है और माँ का हाल पूछता है। माँ ने बताया इधर कुछ दिनों से कुछ कमजोरी लग रही है। खाया-पिया भी ठीक से पचता नहीं।... ठीक हो जाऊँगी! बन्टी मेरा खूब ध्यान रखता है। 'मुझे तो बस तेरी चिन्ता सताती है। अब तो लॉकडाउन लग गया, अब तो तू जल्दी मेरे पास भी नहीं आ सकता'

प्रवीन ने माँ को आश्वस्त करते हुए कहा - 'माँ तुम मेरी चिन्ता मत करो। अपना ध्यान रखो। जैसे ही हालात कुछ ठीक होंगे, मैं तुरन्त आ जाऊँगा।' फिर प्रवीन ने बंटी को माँ से सम्बन्धित कुछ निर्देश दिए।

पन्द्रहवें दिन बंटी का फोन आता है। प्रवीन अपराजिता के साथ अस्पताल में आए कोरोना मरीजों के बारे में चर्चा कर रहा था। प्रवीन ने झट फोन उठाया। बंटी कुछ रुआँसा था। प्रवीन के पूछने पर उसने बताया - माँ को तीन दिन से तेज बुखार आ रहा था। डॉक्टर के पास दिखाए गए तो उन्होंने कोरोना टेस्ट किया जो पॉजीटिव रिपोर्ट आयी।

- " अरे! माँ को कोरोना कैसे हो सकता है? वो तो घर से कहीं बाहर जाती ही नहीं।.. फिर कैसे...? बंटी ने बताया अपने यहाँ जो काम वाली बाई आती है शायद उसी से हो गया है।

पर अब चिन्ता की बात यह है, माँ को कोरोना वार्ड में रख दिया गया है। जहाँ वह भी मिलने नहीं जा सकता अब माँ का ध्यान कौन रखेगा?

प्रवीन ने बन्टी को समझाते हुए कहा - कोई बात नहीं, मैं अस्पताल के डॉक्टर से बात कर लेता हूँ और माँ को स्पेशल केयर में रखने को बोल देता हूँ तुम भी अपना ध्यान रखो और सारी जानकारी देते रहना।

बंटी को तो प्रवीन ने आश्वस्त कर दिया पर वह खुद परेशान हो गया। उसका हृदय व्याकुल हो उठा वह अपराजिता से बार-बार एक ही बात कह रहा था माँ मुझे बुला रही थी, मैं क्यों नहीं गया। काश! मैं तब चला गया होता... अब उनका ध्यान कौन रखेगा

अपराजिता प्रवीन को सान्त्वना देकर शांत कराती है और सब ठीक हो जाएगा... कहकर उसका मनोबल बढ़ाती है।

प्रवीन लेटा हुआ है। आज उसे नींद नहीं आ रही। कहीं दूर से माँ की आवाज गूँजती-सी सुनायी दे रही है। 'माँ ठीक हो होगी न...

अगली सुबह माँ का फोन आता है। माँ की आवाज बहुत धीमी है। - 'बेटा... बेटा...' प्रवीन माँ से और भी शब्द सुनने को बेताब है पर माँ नहीं बोलती। तभी बंटी चीखते हुए बताता है — '... भैया! भैया! माँ नहीं रही!!! ...'

बंटी ने बताया माँ प्रवीन से बात करने के लिए छटपटा रही थी। बस आपकी आवाज सुनकर उन्होंने अपनी अंतिम साँस ली।

दरवाजे की घंटी बजी। बाहर अपराजिता थी। प्रवीन ने दरवाजा खोला और उसे बताया माँ अब नहीं रही। यह सुनते ही वह स्तब्ध रह गयी। और रोते हुए प्रवीन से लिपट गयी।

प्रवीन बार-बार अपने को कोसता रहा कि वह अंतिम समय भी माँ के पास न रह सका। माँ का अंतिम संस्कार भी नहीं कर सका। प्रवीन और अपराजिता ने माँ का अंतिम संस्कार वीडियो कॉल के जरिए देखा। प्रवीन आत्मग्लानि से भरा हुआ है वह माँ की मृत्यु का जिम्मेदार खुद को मानता है और स्वयं को अभागा भी।

अब उसने मन ही मन निश्चय किया है जिस जगह माँ की मृत्यु हुई है वहाँ मैं अस्पताल बनवाऊँगा और गरीबों, बीमारों की निःशुल्क सेवा करूँगा। जैसे ही हालात सुधरेंगे, मैं अपने देश वापिस चला जाऊँगा और सम्पूर्ण जीवन वहीं व्यतीत करूँगा।

चार महीनों बाद प्रवीन अपने देश वापस लौटता है। माँ की अस्थियों को गंगा में विसर्जित करते हुए अपना निश्चय माँ को बतलाता है। अस्पताल के निर्माण के लिए जी-जान से मेहनत करता है और अस्पताल में कोरोना बीमारी के लिए विशेष व्यवस्था भी करता है। सभी गरीबों का मुफ्त इलाज करता है। कोरोना मरीजों की दिन-रात सेवा करता है। धीरे-धीरे उसकी चर्चा शहर से पूरे देश में होने लगती है। दूर-दूर से लोग उसके पास इलाज के लिए आने लगते हैं। प्रवीन सोचता है उसके इस प्रायश्चित को देख शायद उसकी माँ को शांति मिली होगी। आज वह हर माँ की सेवा अपनी

माँ समझकर करता है। अब उसे दूसरों की सेवा करने में ही अपार खुशी मिलती है। अब वह गरीबों और बीमार मरीजों का गॉड फादर बन गया है। सभी पत्र-पत्रिकाओं में उसके साक्षात्कार छपते हैं। पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर उसकी तस्वीर 'गरीबों का मसीहा : डॉ प्रवीन' के नाम से प्रकाशित होती हैं। पत्रिकाओं में लेख 'मरीजों का गॉड फादर' के नाम से लिखे जाते हैं।

आज माँ की मृत्यु को छह महीने बीत चुके हैं। माँ की तस्वीर से बात करते हुए वह कँआसा है। - 'माँ आज तू होती तो यह सब देख कितनी खुश होती। मैंने तुम्हारा सपना पूरा कर दिया। माँ मुझे गॉडफादर कहा जाता है। पर मेरे लिए तो तू ही सब कुछ है मेरी माँ, मेरी गॉड और मेरी फॉदर भी।' ...

• आकांक्षा सिंह
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

जहाँ निभे जिंदगी, वहीं घर, वहीं गाँव...

गत वर्ष कोरोना महामारी के बढ़ते प्रभाव के कारण 24 मार्च 2020 को संपूर्ण भारत में 21 दिन की तालाबंदी की घोषणा सरकार द्वारा कर दी गयी। संपूर्ण तालाबंदी का आशय था अस्पतालों और अत्यन्त आवश्यक सामग्री की दुकानों के अलावा हर तरह के व्यवसाय, स्कूलों-कॉलेजों, यातायात आदि पर तालाबंदी...

इसका प्रभाव यह हुआ कि तालाबंदी के कुछ दिनों बाद ही भारत की सड़कों और पटरियों पर वो नज़ारा दिखा जो इससे पहले केवल 1947 के विभाजन के दौरान ही देखा गया था। दरअसल शहरों में रह रहे प्रवासी मजदूर लॉकडाउन के कुछ दिनों पश्चात् ही अपने मूल निवास स्थानों के लिए रवाना हो गए। 'प्रवासी मजदूर' वे मजदूर होते हैं, जो अपने मूल निवास स्थानों को छोड़कर जीवन यापन करने हेतु शहरों और बड़े महानगरों में आकर मेहनत मजदूरी या रोजगार करते हैं। दैनिक वेतन पर कार्य करने वाले इन मजदूरों को जब कहीं कोई काम मिलने की गुंजाइश नहीं रह गयी, तब पेट भरने को राशन तक न हो पाने के कारण वे अपने गाँवों में वापिस लौट जाने को विवश हो गए। परन्तु वापिस लौटने के निर्णय मात्र से ही उनकी मुश्किलें खत्म नहीं हो सकी, यहाँ से उनकी कठिनाईयों ने एक नया और विराट रूप धारण कर लिया। यातायात के साधनों पर रोक होने के कारण उन्हें पैदल तो कहीं अपनी जर्जर साइकिलों का सहारा ले एक कठिन और लंबा सफर तय करना पड़ा।

यह सफर मामूली नहीं था। इन मजदूरों को जिनमें महिलाएँ, गर्भवती स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे, - बिना कुछ खाए - पिए सैकड़ों मील तक अपने पाँवों के भरोसे चलना पड़ा। इतनी पीड़ाएँ कम नहीं थी कि उन्हें पुलिस की मार व यातना को भी सहना पड़ा। परन्तु ये मजदूर फिर भी अपने निर्णय पर अडिग रहें और पुलिस व प्रशासन से बचते - बचाते, गिरते - पड़ते, छुपते - छुपाते आगे बढ़ते रहे।

अपनी यातनामय यात्राओं के दौरान इन मजदूरों को कई हादसों का भी सामना करना पड़ा। सैकड़ों की संख्या में कई मजदूरों ने रास्ते में ही दम तोड़ दिया। जिस समय प्रशासन द्वारा मजदूरों की इस व्यथा को नज़रअन्दाज़ कर दिया गया, तब कई लोगों ने, स्वयं सेवी संस्थाओं ने मसीहा बनकर इन लोगों की मदद की। - या कहें "इंसानियत अभी मरी नहीं" का प्रमाण दिया। इन मजदूरों में खाने - पीने की सामग्री वितरित की तो परिवहन की व्यवस्था कर सुरक्षित इन्हें इनके घरों तक पहुँचाने का जिम्मा भी उठाया।

इन घटनाओं में से सबसे बड़ी त्रासद घटना वह थी जिसमें औरंगाबाद से मध्यप्रदेश जा रहे सोलह मजदूर थक हार कर जब ट्रेन की पटरियों पर ही सो गए थे, वे इतने अचेत हो गए थे कि उन्हें ट्रेन आने का पता ही नहीं चला और उनकी जीवन लीला समाप्त हो गयी।

यह किसी से छिपा नहीं है कि इन मजदूरों को तालाबंदी के कारण कैसी विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सरकार द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए। तालाबंदी के पचास दिन गुजरने के बाद ट्रेनों को मजदूरों के लिए चलाया तो गया, परन्तु इनमें भी किराया देकर ही वे बैठ सकते थे, जो निश्चित रूप से उनकी क्षमता से बाहर ही था।

यह प्रशासन की लापरवाही का ही अंजाम था कि हमारे देश के मजदूरों को (जो कि कुल अनौपचारिक श्रम बल का 80% है) ऐसी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। यदि तालाबंदी से पूर्व प्रवासी मजदूरों को अपने मूल निवास स्थान तक लौट जाने का पर्याप्त समय दिया जाता तो शायद उनकी यह दुर्दशा न होती। प्रशासन को अपने निर्णय में जनता की हर इकाई पर पड़ने वाले प्रभावों का पूर्व आकलन करना चाहिए, अन्यथा उसके अंजाम विषयुक्त हो सकते हैं। तालाबंदी के दौरान प्रवासी मजदूरों की हुई दुर्दशा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

• सिमरन
(बी० ए० प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष)

शर्मसार इंसानियत

(केरल में मारी गयी हथिनी के गर्भ में पल रहे
शिशु की आवाज)

माँ !
काश हम आज गाँव न जाते
तो खाने की आड़ में दी गयी
भयावह मौत न पाते,
याद है वह पल मुझे माँ
जब तू
खाने को देख खिलखिला उठी थी
अपनी नहीं, मेरी फ़िक्र तुझे
सता रही थी
कहा था तूने - हमें खाना देने वाले
भगवान हैं
तू उनकी इंसानियत से उत्सुक,
उनकी हैवानियत से अनजान थी।

हम जानवरों से डरने का
प्रपंच करके
अपने इंसान होने पर गर्व करते
वे लोग
जानवरों की परिभाषा को
शायद समझते नहीं...
उनके लिए तो यह
महज़ एक खेल था,

पर तेरा दिल तो ममता से
सराबोर था
ना जाने कितनी पीड़ा सही थी तूने,
कितनी तड़पी, कितनी बैचेन हुई थी
फिर भी, मेरे जन्म के लिए
आखिरी सांस तक लड़ी थी तू ।

मेरे लिए कुछ सपने थे तेरे
मेरे रूप को अपनी आँखों से
बुना था तूने
तेरे जैसे नैन - नक्श चाहे थे
मैंने भी
हर पल मेरे आने के सपने बुनती तू
मेरे इंतजार में
पलके बिछाए थी माँ !
वे मूर्ख क्या जाने पीड़ा तेरी
तू मेरी ईश्वर, मेरी माँ !

काश ! बंद कर दे यह विनाश
अब इंसान !
हमें भी जी लेने दे अपने साथ
काश ! फिर कोई माँ ऐसे न रोज
अपना गर्भ खोए
फिर कोई बच्चा अपनी माँ को
देखे बिना यूँ न सोए ।

• गीतांजलि शर्मा
(बी एस. सी., वनस्पति शास्त्र
द्वितीय वर्ष)

रुकी-रुकी सी ज़िंदगी

ज़िंदगी में कुछ मोड़ ऐसे आते हैं जब यह महसूस होता है कि जैसे तख्तापलट हो गया हो जैसे चिली या म्यांमार में हुआ, वैसे ही हममें उपजे हज़ार ख्वाहिशों और सपनों, इच्छाओं और आकांक्षाओं का तख्तापलट होने की प्रतीति... एक रुकी-रुकी सी ज़िंदगी !!!

एक छोटा सा पल ज़िंदगी की परिभाषा को, चलायमान जीवन को कैसे बदल देता है। इसी बदले हुए ज़िंदगी के पहलू कोरोना वायरस का संत्रास और लॉक-डाउन से हम रूबरू हुए। हममें मत भिन्नता पैदा होती है जो मन भिन्नता की ओर ले जाती है। इस रुकी-रुकी सी ज़िंदगी में हमारी दशा कुछ ऐसी ही हो गयी। लाचार और बेबस, उदास और परेशान, क्या करें, क्या न करें... लाचारी और दहशत... विभिन्न परिस्थितियों से मनःस्थिति बदली। बंधनों को तोड़ कुछ नया करने की चाह बलवती हुई। मन के सभी किवाड़ खोल देने की चाह... ऊँचे आसमान में उड़ने की चाह... और इस दुनिया को फिर से अपनी तेज़ रफ़्तार में दौड़ते देखने की चाह...

एक आशा... जब इस वैश्विक महामारी से विजय प्राप्त कर यह समाज जब फिर अपनी गति से चले, तो नव अवसर मिलें क्योंकि यह ज़िंदगी ठहर गयी सी प्रतीत होती है। रुकना या ठहरना गति के विपरीत है जहाँ जीवन कतई नहीं... दूसरी ओर एक वर्ग इस महामारी को धार्मिक कर्मकांड से जोड़कर देख रहा है तो मन अस्थिर हो जाता है क्योंकि दुनिया का सबसे बड़ा दुख

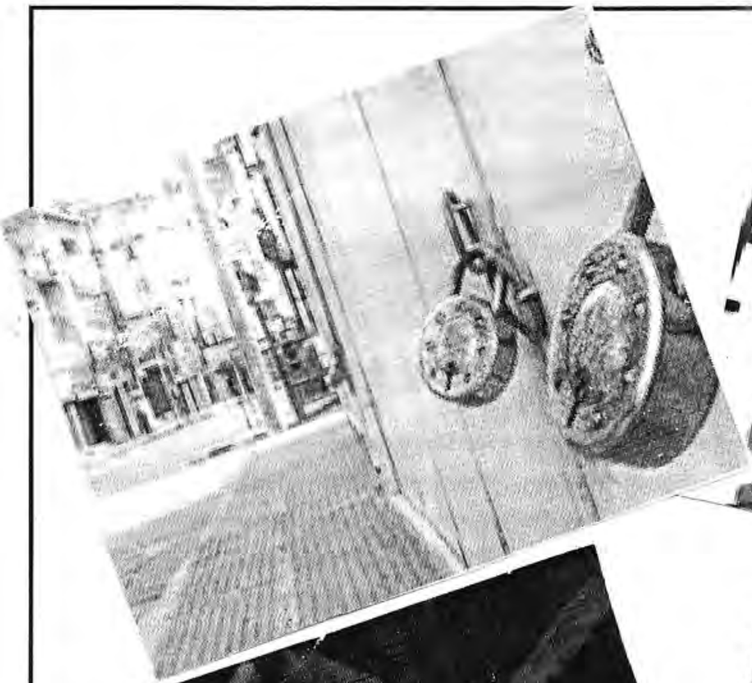

STAY
HOME
STAY
SAFE

अनभिज्ञता है... जबकि सुख स्थितियों का वास्तविक ज्ञान।
यह सच है 'छोटी सोच और पाँव की मोच' व्यक्ति को लंबा नहीं जाने देती। कोरोना काल के विभिन्न भयावह दृश्यों को देख अपने भीतर ऊर्जा और संघर्ष स्वयं ही तलाशनी होगी और ज़िंदगी को बेहतर बनाने का संकल्प लेकर सबक भी लेने होंगे क्योंकि अतीत वर्तमान और भविष्य को रचने और गढ़ने में बहुत सहायक होता है, अगर हम माने तो...

एकता में शक्ति होती है, बस इसी एकता और मानवता को बनाए रखते हुए इस रूकी ज़िंदगी को... इस रंगीन रंगमंच रूपी दुनिया में कठपुतली रूपी हम व्यक्ति अपने अभिनय से इसे कैसे बेहतर तरीके से निभाएं यह एक प्रश्न है... जिसका उत्तर हम सब मिलकर खोजें।

• अंजलि द्विवेदी
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

नूर

कहानी

छत पर नूर टूटी चारपाई पर जमीन में लटकी हुई-सी लेटी हुई थी। आज चाँद चाँदनी से चमक रहा था। बादल दौड़ लगाने में व्यस्त है, कोई भी ठहर कर चाँद से वार्तालाप नहीं करना चाहता लेकिन बिना देखे ही चाँद से इश्क जरूर करते हैं। नूर काली अंधेरी रात में खोई हुई सी चाँद पर बैठी हुई है, जहाँ उसे अनेक अप्सराएँ भोजन खिलाने का प्रयास कर रही हैं, लेकिन नूर को पिज़्ज़ा खाना है। अप्सराओं ने पिज़्ज़ा का आर्डर तो दे दिया है, पर आर्डर आने में समय है। तभी अचानक नूर चाँद से सीधा अपनी छत पर गिर पड़ी। उसे होश भी नहीं है कि, उसकी अम्मा कब से बुला रही है। नूर नीचे दौड़ कर आती है। नूर रूठे स्वर में कहती है-
"ओहो! अम्मा आपने मुझे पिज़्ज़ा भी नहीं खाने दिया।
नूर की अम्मा हैरानी से नूर को देखती है। नूर की माँ ज़ाया प्राइवेट स्कूल में अध्यापिका है। उसके पापा और माँ का तलाक उसके जन्म से पूर्व ही हो गया था। अब वह अपनी माँ के साथ रहती है। कभी-कभार उसके पापा उससे मिलने आते हैं।

नूर अपनी कल्पना के साथ न जाने कहाँ-कहाँ घूमकर आ चुकी है। अभी वो केवल आठ बरस की है। उसे याद आया अब होली की छुट्टी खत्म होने वाली है और उसने स्कूल का होमवर्क अभी तक नहीं किया है। पता नहीं मन ही मन में बहुत देर से क्या मंत्रणा कर रही है। शायद अपनी

अपनी अध्यापिका को कल स्कूल न आने का निवेदन कर रही है। नूर कमरे में लेटी-लेटी सो गयी। अचानक उसकी अध्यापिका उसके सामने मिठाई लिए खड़ी है। अध्यापिका को सामने देखकर नूर स्तब्ध खड़ी रही। अध्यापिका मिठाई उसकी ओर बढ़ाते हुए मधुर स्वर में कहती है - 'लो। नूर मिठाई खाओ।' जैसे ही उसने मिठाई हाथ में लेनी चाही, वैसे ही एक जाल उसके सिर पर आ गिरा। नूर डरकर रोते हुए ऊँचे स्वर में अम्मा को पुकारने लगी। ज़ाया दौड़ते हुए बेटी नूर के पास आती है - "क्या हुआ नूर? क्यों डर गयी? क्या बुरा सपना देखा? रो मत... मैं तुम्हारे पास ही हूँ।"

नूर रोते हुए स्वर में बोली - "अम्मा मुझे आज स्कूल नहीं जाना।... नहीं जाना..." और जोर जोर से रोने लगी। ज़ाया मुस्कुराकर सरल भाव से कहती है 'ठीक है, मत जाना...' अचानक नूर की अश्रु धारा में सूखा पड़ गया। अब ये सूखा पन्द्रह दिन तक रहने वाला था। कोरोना महामारी के कारण संपूर्ण देश में सरकार द्वारा लॉकडाउन लगा दिया गया है। नूर के लिए कोरोना जिन्न से कम नहीं था। अब उसे समझ में आया कि अध्यापिका मिठाई क्यों खिला रही थी। वह मन ही मन मुस्कुराने लगी।

इन दिनों नूर खूब उछल-कूद करती, कभी सूरज को नहला कर आती तो कभी चाँद को केवल दे आती। वो अपनी दुनिया में खूब खुश है। उधर ज़ाया अपने मनोभावों और पीड़ाओं से लड़ रही है। कहने को तो वह एक प्राइवेट स्कूल की अध्यापिका है, पर आय एक कर्मचारी की भी

नहीं मिलती है। कोरोना के कारण स्कूल बंद हो गए हैं स्कूल ही तो उसकी आय का साधन है। अब तनख्वाह नहीं मिलेगी तो जीवन कैसे चलेगा... । तभी कुछ शोर से ज़ाया के चिन्तन में खलल उत्पन्न हुआ। उसने बालकनी से देखा सभी लोग थाली, ताली बजा रहे थे। उसने सोचा ये शोर मेरे मन के शोर से कितना भिन्न है न !... उसी शोर के बीच ज़ाया का ध्यान गली में छुपने की जगह ढूंढ रहे, एक अधमरे कुत्ते की ओर गया। वह डरा हुआ था, पर लोग उसे डरते देख आनंदित हो रहे थे। जान बूझ कर कुछ लोग उसके पास जोर-जोर से थाली पीट रहे थे ज़ाया इंसानियत की चिता को लाइव जलता देख, अँधेरे में खो गयी। यह अंधेरा कोरोना से भी अधिक भयावह है। उस कुत्ते की लाचारगी देख, उसे अपने दुख हलके लगने लगे।

लॉकडाउन लगे दो महीने हो चुके थे। आधा शहर खाली हो चुका था। लेकिन नूर अपने नूरानी चाँद के साथ खेला करती थी। वो रोज कोरोना का शुक्रिया अदा करती है, नहीं तो कौन इतना बेफ्रिकी से खेलने देता है। ज़ाया पास ही के एक सरकारी स्कूल में खाना बाँटने का काम करने लगी है। लोगों को खाना बाँटते उसे अजीब-सा सुकून मिलता है। भले ही उसके भीतरी मनोभाव उसे शांत नहीं रहने देते थे। जब वह अपना काम पूरा करके घर लौटती, तब गली के लोग उससे ऐसे दूर रहते, जैसे ज़ाया को देखते ही उनकी मृत्यु निश्चित हो। लेकिन गली का सबसे सशक्त प्राणी वह कुत्ता

उसे उसके पीछे-पीछे घर तक छोड़ने आता था। ज़ाया उस कुत्ते को भोजन भी देती थी, इसीलिए गली में सभी लोग उस कुत्ते को अपने घर के चबूतरे पर बैठने पर उपहार के रूप में अंडे देते थे।

दिन पर दिन बीतते गए। लॉकडाउन की अवधि में भी वृद्धि होती रही। - उधर सोशल डिस्टनसिंग का कूड़ा-कबाड़ा होता रहा। एक दिन अचानक ज़ाया को साँस लेने में तकलीफ होने लगी। तबीयत ज्यादा खराब होने के कारण, वह सरकारी अस्पताल गयी, वहाँ उसका उपचार ठीक से नहीं हुआ। कोरोना संक्रमित होने का संदेह उस पर था। कोरोना टेस्ट का परिणाम सकारात्मक रहा। नूर भी कोरोना संक्रमित हो गयी। अब नूर को जिन्न की ताकत का अहसास हुआ। उसे अपने नूरानी चाँद का ख्याल आया। क्या कोरोना उसे भी संक्रमित कर देगा। क्या नीले आसमान से उसे बेदखल होना होगा? नूर न जाने किन अजीबोगरीब नयी-नयी कल्पनाओं में खोयी रहती।

कुछ दिनों बाद ज़ाया और नूर स्वस्थ होकर घर लौट आए। गली में भीड़ लगी थी। नूर और ज़ाया की खैरियत पूछने के लिए नहीं, बल्कि उनकी शक्लें देखने के लिए, जैसे उनकी प्लास्टिक सर्जरी हुई हो। नूर को हँसी आ रही थी। ज़ाया भी मुस्कुराते हुए घर के भीतर चली गयी। तभी दरवाजे पर आहट हुई। नूर घबरा गयी। ज़ाया ने दरवाजा खोला, सामने वाली गली के मंदिर के पंडित जी सामने थे

उनके हाथ में भोजन की थाली थी, जो वे दोनों के लिए लाए थे। उन्होंने मुँह पर मास्क लगाया हुआ था। दूर खड़े होकर ज़ाया से उनका हाल-चाल पूछा और ख्याल रखने की हिदायत देते हुए चले गए।

ज़ाया के मुख पर आशा की चमक फिर लौट आयी। जैसे कुछ खो गया हो, उसे पाकर वह मुस्कुरा उठी। नूर अम्मा को इस नुरानियत को आश्चर्यचकित हो देखती रह गयी।

• आँचल कुमारी
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

लॉकडाउन और स्त्री

31 दिसम्बर 2019 में चीन के वुहान शहर में फैली छोटी सी श्वसन निमोनिया सम्बन्धित बीमारी ने धीरे-धीरे पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया और विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा इस महामारी को कोरोना, कोविड-19 नाम दिया गया। इस बीमारी के कई आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सामुदायिक प्रभाव रहे जिसका आधार बना बीमारी नियन्त्रण हेतु बनाया गया 'लॉकडाउन'। इस लॉकडाउन का प्रभाव भारत में भी 22 मार्च 2020 से हुआ, किन्तु जैसे-जैसे इसकी अवधि बढ़ती गयी आर्थिक पक्ष के साथ-साथ सामाजिक पक्ष भी प्रभावित हुए।

लॉकडाउन की स्थिति ने प्रबुद्ध समाज को इस बात पर पुनः चिन्तन हेतु बाध्य कर दिया कि क्या वास्तव में हमारा समाज, हमारी प्रकृति प्रबद्ध है? क्या हम यथार्थ रूप में समाज, देश, राष्ट्र का समावेशी विकास साझी प्रगति की ओर अग्रसर हैं? क्या समाज के सभी वर्गों तक विशेषकर वंचित वर्ग (स्त्रियाँ, मजदूर/श्रमिक, बुजुर्ग बच्चे) तक अधिकारों का समान वितरण किया गया है? क्या वास्तव में हम स्त्रियों को सम्मान, समान दर्जा व स्वतन्त्रता प्रदान कर पाएं हैं? सभी प्रश्नों का उत्तर आंशिक सफलता के बाद 'शायद नहीं' रूप में ही होगा क्योंकि कोरोना जनित लॉकडाउन ने समाज द्वारा बुनी गई 'सुनहली' एवं झीनी चादर' की सच्चाई उजागर कर दी जिसे बुनने में समाज ने मेहनत की थी या फिर यों कहें कि मिथ्यावरण के प्रपंचों को कोरोना ने सामने ला दिया। पितृसत्तात्मक समाज ने लॉकडाउन के शुरूआती चरण को सहर्ष स्वीकार किया एवं संयमित व्यवहार

बनाए रखने का प्रयत्न किया, किन्तु जैसे-जैसे यह अवधि बढ़ी समाज की उदारता, सहिष्णुता व धैर्य क्षमता जैसे दम तोड़ने लगी और अवसाद, तनाव, आर्थिक जोखिम एवं अन्य कारकों जनित समस्याओं का विवेचन बिन्दु महिलाएँ बनने लगी। उनके प्रति हिंसा, बलात्कार, शारीरिक शोषण, प्रताड़ना के मामले तेजी से बढ़े। 'यूनीसेफ' की रिपोर्ट के अनुसार -महिलाओं के पोषण स्तर में 40% की कमी आयी साथ ही हिंसा जनित हेल्पलाइनों के संचार में बाधा होने से शोषण में कई गुना वृद्धि हुई। गृह मामलों की विभाग संबंधित संसदीय स्थायी समिति ने महिलाओं और बच्चों के खिलाफ अत्याचार एवं अपराधों से सम्बन्धित रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके अनुसार - 'कोरोना महामारी के दौरान घरेलू हिंसा और महिलाओं एवं बच्चों की तस्करी में वृद्धि हुई। महिला प्रवासी मजदूरों का शारीरिक शोषण एवं उत्पीड़न हुआ साथ ही महिला अपराधों से सम्बन्धित मामले पुलिस स्टेशन में समय से दर्ज नहीं हो पाए।' रिपोर्ट ने सभी पहलुओं की गहन जांच की थी जिसके आधार पर मन में सहसा ये पंक्तियाँ गूंज गयी-

'आज भी आदम की बेटी हंटरों की जद में है
हर गिलहरी के बदन पर धारियाँ होंगी जरूर।'

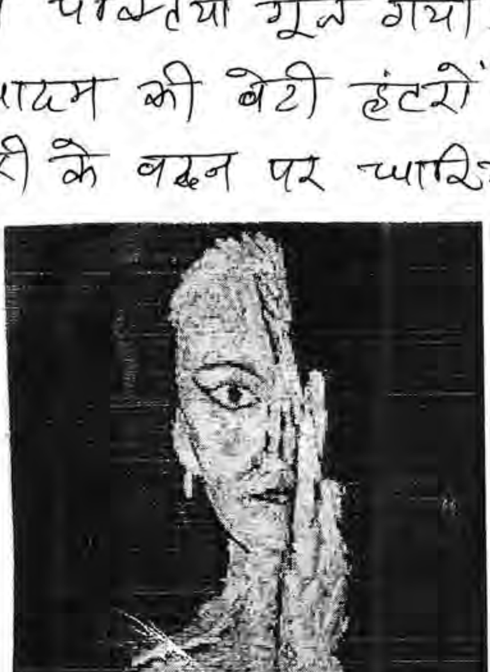

महिलाएँ, जिन्हें आधी आबादी, नारी शक्ति की संज्ञा दी जाती है क्या पुरुष प्रधान मानसिकता उन्हें उनके अधिकार देने के लिए तैयार है? यह अधिकार प्राप्ति की लड़ाई वैश्विक स्तर पर है। किन्तु भारतीय समाज में यह संघर्ष विपरीत परिस्थितियों के विरुद्ध अनेक चुनौतियों से लड़ती 'आधी आबादी' के लिए कई गुना कठिन है।

पुरुषों द्वारा, समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा स्त्रियों के प्रति उदार एवं प्रगतिशील नजरिया अपनाने का तर्क दिया जाता रहा जिसका आधार उनकी सामाजिक भागी-दारी में वृद्धि, 1971 की महिला साक्षरता दर 22% से बढ़ कर 2011 में 64.6% होना तथा स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, किशोरी बालिका योजना आदि को बनाया जाता है किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्या शिक्षा दर में वृद्धि महिलाओं की सुधरती स्थिति की परिचायक है? भारत में आज भी 98% महिलाएँ 'आँचल में दूध और आँखों में पानी' लिए अस्तित्व की खोज में मुक्ति की तलाश में दर-बदर भटकने को मजबूर है। राष्ट्रीय महिला आयोग के सर्वेक्षण के अनुसार- 'अप्रैल-मई के मध्य लॉकडाउन में महिलाओं पर हिंसात्मक कार्यवाही बढ़ गयी। घर के कार्य करने के अतिरिक्त कामकाजी महिलाओं को 'वर्क फ्राम होम' के दौरान तनाव, कार्यदबाव एवं मानसिक प्रताड़ना का शिकार होना पड़ा। लॉकडाउन के कारण महिलाएँ विरोध करने की स्थिति में भी नहीं थी। सर्वेक्षण के अनुसार इस महामारी के कई अन्य प्रभाव भी महिलाओं पर पड़े जैसे- लैंगिक भेदभाव में बढ़ावा, मानसिक हिंसा व प्रताड़ना, आर्थिक निर्भरता बढ़ाना जैसे कारणों ने 'आधी आबादी' को पीछे धकेला है।

लैंगिक भेदभाव हो या शिक्षा के स्तर पर बालिकाओं का ड्रापआउट रेट अधिक रहना - समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता के द्योतक हैं। सीमोन द बोउवार के शब्दों में - 'स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि बना दी जाती है।' भी उक्ति बतलाती है कि यह विभेद प्राकृतिक न होकर मानव निर्मित है। यह बात कोरोना लॉकडाउन ने स्पष्ट कर दी। स्वतन्त्रता, समानता की सुंदर परिभाषा गढ़ने वाले अमेरिका में भी महिलाएँ घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं। युद्ध से होने वाले विस्थापन अथवा हिंसा के कारण शरणार्थी वर्ग में शामिल सर्वाधिक संख्या महिलाओं और बच्चों की है।

- यद्यपि समाज में धीरे- धीरे बदलाव हो रहे हैं। सरकार द्वारा निरन्तर समावेशीकरण को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं जिसमें विशाखा गाइडलाइन, हिंसा की शिकार महिलाओं के कंसलटेशन हेतु हेल्पलाइन नम्बर, राजनैतिक स्तर पर स्वतन्त्रता व समानता का अधिकार दिया जाना - जैसे अनेकों प्रयास शामिल हैं। विभेदीकरण के कारणों की पूर्ण समाप्ति हेतु चरणबद्ध रूप से प्रयास करने की आवश्यकता है, जिसमें बच्चों में लैंगिक भेदभाव समाप्त करना, शिक्षा का समान अधिकार मिलना, महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना तथा अपराधों के प्रति विरोध जताना जैसे कर्तव्यों का अनुपालन सुनिश्चित करना होगा, वहीं सरकारी स्तर पर अपराधों की त्वरित FIR दर्ज किया जाना, हेल्पलाइनों को अधिक दक्ष एवं तकनीकी सम्पन्न बनाना, न्याय प्राप्ति हेतु फास्ट ट्रेक कोर्ट की स्थापना किया जाना जैसे कई अन्य प्रयासों को बढ़ाना होगा।

नारी ने धीरे-धीरे खुद को जाना है। अपनी शक्ति और गुणों को पहचाना है, लेकिन अभी भी मंजिल दूर है और संघर्ष जारी है। उसे सामाजिक अवरोधों, तिरस्कार, बहिष्कार और अवहेलना को नकारते हुए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए अपनी सार्थकता सिद्ध करनी होगी। स्त्री की लड़ाई पुरुष से नहीं, पुरुषसत्तात्मक समाज की बनायी गयी रूढ़ियों और बंधनों से है। वह अब स्वयं को चौखटे में जड़ दी गयी भूमिका को नकार रही है - यह बात प्रबुद्ध वर्ग को समझनी होगी।

माँ-बेटी, बहू-बीवी से इतर है अस्तित्व मेरा
न बांधो रूढ़ियों में, बहना ही है जीवन मेरा
क्यों बना देते हो देवी? गर देना हो सम्मान मुझे
हाथ जोड़ विनती है रहने दो बस इंसान मुझे।

• सुमन यादव
(बी० ए० प्रोग्राम
द्वितीय वर्ष)

सवाल

ये जिंदगी महज़ जिंदगी नहीं
एक शोर है!
इस दिल के शोर को अब मैं
बंद करना चाहती हूँ।
ठहरी नहीं हूँ कब से,
अब ठहरना चाहती हूँ।
इन तूफानों से डरना नहीं,
इन्हें अब थामना चाहती हूँ
चुप हूँ कब से, पर
अब मैं बोलना चाहती हूँ
अंधेरे में बीती इस जिंदगी का
हिसाब मैं चाहती हूँ
हर बहे आँसू का बवाल मैं
चाहती हूँ।
चुप हूँ कब से पर अब
मैं बोलना चाहती हूँ
अकेली मैं नहीं लड़ने वाले
हज़ार मैं चाहती हूँ!
सवाल तेरे दिल के,
सवाल मेरे दिल के,
इस दिल से अब बाहर
लाना चाहती हूँ!

• निकिता सौकरिया
(हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष)

चाह

हाँ आज कुछ करने की चाह फिर जगी है,
चाह जो अंजान है अंधेरों के खौफ से,
चाह जो ख्वाब है मगर हकीकत से कुछ दूर है,
चाह जिसके लिए कांटों और अंगारों पर
चलना भी मंजूर है।
ना है कोई गरजता बादल यह,
है यह तो बरसने को तैयार मगर यह मजबूर है,

मजबूरी से मजबूती तक, निराशा से आशा तक,
तलब से तृप्ति तक और हार से जीत तक का रास्ता
चाह रोटी नहीं, कपड़ा नहीं, ना है कोई मृगतृष्णा
चाह तो है अपनी सोई हुई किस्मत को घिसना,
चाह कठिनता का गहना है
चाह विपरीत परिस्थितियों में भी हँसकर रहना है,

चाह बीते कल से निकली, आने वाले कल की
कहानी है,
चाह प्यार का समन्दर और अश्कों का पानी है,
चाह सफलता की असली निशानी है,
बस.. बस.. यही चाह अपने मन में जगानी है।

• प्रिंसी पाराशर
(बी० ए प्रोग्राम.द्वितीय वर्ष)

लॉकडाउन और बच्चे

कोरोना महामारी में लगा लॉकडाउन एक अप्रत्याशित घटना साबित हुआ। 'लॉकडाउन' एक नया शब्द उभर कर आया जो शायद ही किसी ने पहले सुना हो। इसकी चपेट में समाज का हर वर्ग आया। लेकिन 'बच्चे और लॉकडाउन' वाक्य सुनते ही बंधनग्रस्त उदास दुनिया दिखने लगती है। जब नया-नया लॉकडाउन आया, तो बच्चों की बांछें खिल गयी। रोज सवेरे तैयार होकर जल्दी से स्कूल भागना, होमवर्क न करने की चिन्ता, अध्यापकों की डांट-सबसे छुटकारा। लेकिन समय के बढ़ते क्रम में ऐसा लगा बच्चों से उनका बचपन छिन गया। उन्हें लॉकडाउन में माता-पिता व अन्य परिवार-जनों का स्नेह व सान्निध्य पूरी तरह प्राप्त हुआ, जो कई कारणों से पहले नहीं मिल पाता था या कहीं अधूरा रहता था। 'परिवार' परिवार लगने लगे।

लेकिन कैद और बंधन कब तक? घर पर कैद होकर बच्चों का व्यक्तित्व विकास जैसे अवरुद्ध हो गया। सामान्य दिनों में अनेक सामाजिक क्रियाओं में व्यस्त रहकर, अपने मित्रों के साथ बैठकर उनके साथ एवं सहयोग से उनका जो विकास हो रहा था, उसकी गति थम गई। मनोरंजन के अन्य साधन व सुविधाओं न होने के कारण बच्चे 'सोशल मीडिया' के अधिक करीब आ गए। लगातार उस पर आश्रित रहने के कारण बच्चे अवसाद के

शिकार भी हुए। एक रिपोर्ट के मुताबिक 12 से 19 वर्ष के बच्चे लॉकडाउन के दौरान सबसे अधिक डिप्रेशन के शिकार हुए। बच्चों की दुनिया स्मार्ट फोन तक सिमट गयी जिस कारण वे Anxiety और stress से भी घिर गए। इस आभासी दुनिया ने जहाँ अनेक नकारात्मक प्रभाव डाले वहीं नए-नए संबंध भी बने। चाहे वे संबंध वर्चुअल ही रहे। पर लोगों के बीच परस्पर पहचान बढ़ी।

लॉकडाउन में online शिक्षा ने जहाँ पढ़ाई की गति रुकने नहीं दी, वहीं यह सिरदर्द का भी बड़ा कारण बनी। - अर्थात् नयी परेशानियाँ और चुनौ-तियाँ सामने आयी। बच्चों को अनेक शारीरिक व मानसिक परेशानियों का सामना करना पड़ा। online classes के कारण पाठ्यक्रम व पढ़ाई के प्रति उनकी ध्यानाकर्षण क्षमता में गिरावट भी देखी गयी। छोटे बच्चों के साथ तो माँ-पिता के दायित्व और बढ़ गए।

हाँ, इस समय ने बच्चों की रचनात्मकता में भी वृद्धि की, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसे संकट ग्रस्त समय में उन्होंने अपनी रुचियों को पहचाना और अपने व्यक्तित्व को नया विस्तार दिया। गूगल पर सर्च करते हुए अनेक नयी जानकारियाँ हासिल की। online उपन्यास, फिल्में, लघु फिल्में भी देख कर सामाजिक समस्याओं से रूबरू हुए तो इस दौरान नए-नए स्वतंत्र यू-ट्यूब चैनल भी निर्मित हुए, जहाँ उन्होंने अपनी रुचियों को दिखाया। यह एक नया प्लेटफॉर्म था, जहाँ ज्ञान और मनोरंजन दोनों था। बहुत से बच्चों ने देशी-विदेशी भाषाएँ सीखी तो

कुछ ने वाद्य यंत्र और संगीत आदि सीखा।

लेकिन... भला कब तक यों 'कैद' में जीना होगा? प्रश्न अब भी यथावत है! स्कूल, दोस्त, अध्यापकों की डांट और स्नेह, कैंटीन का खाना, दोस्तों का टिफिन चुराकर खाना, क्लास की मस्ती और ठहाके कब लौटेंगे? खुले आकाश और विस्तृत फैले मैदानों में कब बाँहें फैलाए बाहर जा पाएंगे - बिना भय और दहशत के! अब केवल स्नेह-संबंध होंगे - दूरियाँ नहीं...

• शिखा
(राजनीति विज्ञान- द्वितीय वर्ष)

बचपन पर बेड़ियाँ

कल तक जिस दरवाजे के
खुलते ही
उसके नन्हें कदम घर से
निकलने को आतुर
हो उठते थे
आज वही दरवाजा
बाधा बन गया था

खुला आँगन,
मैदान और बगीचे
साथियों के साथ
हँसना-रूठना, गिरना-उठना
औ धूल में सनना
एक खुशनुमा अतीत हो
गया था
आकाश में उड़ते
परिन्दों की आवाजों में
मित्रों की हंसी की गूंज का
होता था आभास

आज उसी दरवाजे से
दहशत-सी
हो गयी थी उसको

दरवाजे के पीछे से
उसकी उम्मीद भरी आँखें
कुछ पूछ रही थी
मानो अपने बचपन की
शरारतों को ना कर पाने का
कुसूर जानना चाहती हो
हम सबसे !

• अनुष्का यादव
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

परदा ही आबरू का रखवाला

कहानी समीक्षा

यशपाल हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध्य कहानीकार व उपन्यासकार हैं। यों तो उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी है पर उनकी 'परदा' कहानी बहुत प्रसिद्ध है। कहानी में आरंभ से अन्त तक परदा एक मूल भावना को लेकर चलता है वह है इज़्ज़त! श्रेष्ठ, शिष्ट और कुलीन होने का भाव। परदा अपने बदलते स्थान और स्वरूप के साथ बदलते हालातों की ओर भी संकेत करता है। पीरबक्श के दादा के समय में लटकाया गया परदा अच्छे कपड़े का था और पक्की हवेली की ड्योढ़ी पर था। समय के साथ परिवार बनता गया परन्तु आर्थिक स्थिति में कोई बढ़त नहीं हुई। ऐसे में पीरबक्श का समय आते-आते परदा कपड़े का नहीं, दरी का लगाया जाने लगा था। कहानी के बढ़ते क्रम में चौधरी पीरबक्श को मिल रही इज़्ज़त का स्रोत और स्वरूप सामने आता है। "उस पूरी बस्ती में चौधरी पीरबक्श ही पढ़े लिखे और सफेदपोश थे... उनके घर की औरतों को किसी ने गली में नहीं देखा था।" मुहल्ले में चौधरी पीरबक्श की इज़्ज़त थी। उस इज़्ज़त का आधार था ड्योढ़ी पर टंगा परदा। पीरबक्श की आर्थिक स्थिति दयनीय थी परन्तु परदे की ओट में छिपी हुई थी। इस ओट में गरीबी के साथ घर की औरतों की मनःस्थिति भी थी। घर की स्त्रियों का परदे में रहना आबरू बनाए रखने के लिए जरूरी था।

परदा पीरबख्श की श्रेष्ठता बोध का परिचायक है।

कहानी में आगे, जब घर के किवाड़ गलकर टूट गए और नए लगवाने के पैसे नहीं थे तब भी पीरबख्श के मन में इस समस्या का निवारण निकालने की जगह चिन्ता इज्जत बचाए रखने की थी। "चोर से ज्यादा फ़िक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवाला था।" यहाँ अहम बात पीरबख्श की मानसिक अवस्था की है। यथार्थ की गहरी चोट लगने के बावजूद भी वह अपना विश्वास उस परदे पर टिकाकर रखता है। परदे जैसी नाजुक चीज उसे श्रेष्ठ महसूस कराती है।- उसकी आबरू को बचाती है। पीर-बख्श के मन में एक बार भी यह भाव नहीं आता कि यदि वह घर का परदा हटाकर उसे बाहर से देखे तो क्या वह स्थान और वहाँ रहने वाले लोग देखने की अवस्था में हैं? - उनकी क्या दशा है? परदा पीरबख्श के मनोविकार को बढ़ावा देता है। श्रेष्ठ और कुलीन होने की यह इच्छा इस कदर पीरबख्श के मन में बस चुकी है कि यदि वह यथार्थ में इसे अपनी आर्थिक अवस्था के कारण नहीं पा सकता तो कम से कम परदे के सहारे सांकेतिक रूप से उसे समाज में पा ले।

" खान ने ड्योढ़ी पर लगा दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी का परदा हटने के साथ ही जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गयी।... जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आँगन के सामने पड़ा था। परन्तु उसे फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब उसकी आवश्यकता भी नहीं रही थी। परदा जिस भावना का अवलंब था, वह मर चुकी थी।" कहानी का यह अंतिम भाग साफ-साफ दर्शाता है कि

पीरबक्श ने इज्जत का जो नाजुक महल परदे की ओट में खड़ा किया था, वह कैसे एक ही पल में चकनाचूर हो गया।

असल में हम सब जानते थे कि परदा एक न एक दिन तो उठना ही था। पर शायद पीरबक्श ने ऐसा नहीं सोचा था। उसके अनुसार तो जीवन यूं ही परदे की ओट में ही कट जाता। चाहे जीवन में जो भी उतार-चढ़ाव आएँ। परदा हटने का दृश्य एक मार्मिक दृश्य है। जो शायद कोई नहीं चाहता कि उसे देखना पड़े। परन्तु सच यही है, सच्चाई के दृश्य ऐसे ही भयभीत कर देने वाले होते हैं, जब लंबे समय से हमें उसे परदे में ढका देखने की आदत हो। आखिर परदे जैसी नाजुक और काल्पनिक चीज, कब तक ठोस और सजीव यथार्थ को सामने आने से रोक पाएगी। परदा हटना अनिवार्य है। पाठक के लिए परदा एक ऐसी काल्पनिक इज्जत का स्रोत है जो कि एक किस्म के मनोविकार को बढ़ावा देती है जिसके कारण पीरबक्श अपनी आँखों पर लगा यह परदा हटाकर यथार्थ को सामने खड़ा नहीं देख पाते। परन्तु पात्रों के लिए परदा किस भावना का परिचायक है इसका पता नहीं लग पाता क्योंकि एक भी पात्र (जो परदे के पीछे हैं) परदे के बारे में कुछ नहीं कहते।

और उसे सलामत रखने के लिए उसकी मरम्मत कर एक प्रकार से परदे को स्वीकृति देते हैं। लेकिन परदे को देखने वालों के लिए, चाहे वो कहानी के अंदर हो या बाहर - परदा कमजोरियों को छिपाने का और कुलीन होने के भ्रम को सहारा देने का साधन है।

अन्ततः यह एक प्रतीकात्मक कहानी है जिसका उद्देश्य हमारे समाज के भीतरी खोखलेपन पर पड़े हुए आवरण अर्थात पर्दे को हटाकर उसकी असली तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

• दीक्षा रानी

भावना ही जिंदगी नहीं होती

पुस्तक समीक्षा

आज बहुत उलझन में हूँ। उलझन भी ऐसी कि मैं समझ ही नहीं पा रही कि मेरे मन में हजारों ख्याल हैं या मैं सरासर शून्य हूँ। सोचती हूँ यह सिर्फ मेरे साथ ही हो रहा है या जीवन में कभी न कभी किसी के साथ भी ऐसा होता होगा। आँखें बंद करके स्वयं को स्थिर कर खुद को समझने का प्रयास कर रही हूँ। पर कुछ भी तो समझ नहीं आ रहा। शायद ऐसा भी हो सकता है कि मन में भावनाओं और उलझनों का एक गुबार है, परन्तु उसे शब्दों में कह पाना कठिन हो रहा है।

आज मैंने मोहन राकेश कृत नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' पढ़ा। नाटकों में पढ़ने में मेरी कभी रूचि नहीं रही। कक्षा में अध्यापिका से इसका जिक्र सुना था और एक बार यूट्यूब पर हिंदी साहित्य की दस सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की वीडियो देखते हुए पाया कि इस पुस्तक को भी इसमें शामिल किया गया है। तो बस- मैंने भी इसे पढ़ने की ठान ली। ... पर इस रचना को पढ़ने के बाद मैं बेहद उदास और दुखी हूँ क्योंकि मेरी उम्मीद से भिन्न नाटक का अंत हुआ। पर मैं सौभाग्यशाली भी

हूँ क्योंकि इस रचना ने जीवन के प्रति सोचने का मुझे नया दृष्टिकोण दिया।

नाटक की कहानी में कालिदास और मल्लिका दो मुख्य पात्र हैं। वस्तुतः कालिदास और मल्लिका की ही प्रेमकथा है। प्रेम भी ऐसा शाश्वत और निष्कलंक, जिसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। आषाढ़ के दिनों में जब झूम-झूम कर बारिश होती है तो बारिश की बूंदों में, मेघ के गर्जन में, पर्वतशिखरों पर घिरती काली घटाओं में दोनों प्रेम का अनुभव करते हैं। साथ-साथ घूमते हैं, वार्तालाप करते हैं। परन्तु उनके मन में कभी भी विवाह का ख्याल नहीं आता। कालिदास ने तो तय किया था कि वह कभी विवाह नहीं करेंगे। क्या यदि वर्तमान समय में कोई कहे कि वह प्रेम करता है लेकिन आजीवन विवाह नहीं करना चाहता तो कोई युवती स्वयं को उसके साथ जोड़े रखना चाहेगी या कोई युवक ऐसा कह भी पाएगा? सम्भवतः कल्पना करना भी व्यर्थ है। परन्तु भाव में जीने वाली मल्लिका कालिदास के इस प्रयोजन को सहर्ष स्वीकार करती है और अपनी माँ के बार-बार समझाने के बाद भी कहती है - 'माँ मुझे शादी नहीं करनी' एक सवाल के प्रत्युत्तर में तो वह कहती है - 'इतनी जिंदगी कट गयी, आगे भी कट जाएगी। यहाँ तक कि कालिदास के उज्जयिनी चले जाने के बाद जब उसे पता चलता है कि कालिदास ने एक राजकन्या से विवाह

कर लिया है तो भी उसके मन में जरा भी दुर्भावना नहीं आती। - वो कहती है - 'इसमें गलत ही क्या है' मल्लिका को भावनाओं में रहना पसंद है, ऐसा जान पड़ता उसके लिए भावना ही सब कुछ है। कई वर्ष बीत जाते हैं कालिदास और मल्लिका का मिलन नहीं होता। कालिदास अब बहुत बड़े कवि हो चुके थे और अब वे कालिदास से मातृगुप्त हो चुके थे। कालिदास एक बार मल्लिका के गाँव में भी आते हैं मल्लिका मन ही मन उनकी प्रतीक्षा करती रहती है पर वह उससे मिलने नहीं आते। इस पर भी मल्लिका का विश्वास अडिग रहता है। वह समय-समय पर उज्जयिनी से आने वाले व्यवसायियों से अनुरोध कर कालिदास की हर रचना मंगवाती रहती है और प्रति मिलने पर बड़े मनोयोग से उसे पढ़ती है। वह सोचती है जब वह उनसे मिलेगी तो उन्हें उन्हीं की रचनाएँ सुनाएगी और कहेगी :- देखो मुझे मुझे तुम्हारी सारी रचनाएँ याद हैं।' परन्तु जब तक समय आता है बहुत देर हो जाती है। मल्लिका की माँ की बीमारी से मृत्यु हो जाती है और - मल्लिका को परिस्थितियों से समझौता करना पड़ता है आखिरकार जब अन्त में कालिदास सब कुछ त्याग कर और मातृगुप्त से पुनः कालिदास बन लौटकर आते हैं और बताते हैं कि किस तरह यहाँ का मोह उन्हें वापिस ले आया और किस तरह उनकी हर रचना में मल्लिका, कालिदास और उस जगह का

ही वर्णन था, पात्र और नाम भले अलग हों।
कहते हैं 'कुमार संभव' की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो, मेघदूत के यक्ष की पीड़ा मेरी है और विरह विमर्दिता यक्षिणी तुम हो इत्यादि इत्यादि। इन्हीं बातों के मध्य बच्ची के रोने की आवाज और विलोम (मल्लिका का पति) के आगमन से कालिदास को पता चलता है ये दोनों मल्लिका का वर्तमान है और कालिदास मल्लिका के रोकने के बावजूद चले जाते हैं।
इस प्रकार नाटक खत्म होता है। पर्दा गिरता है, पर मुझ पाठक की नींद गायब हो जाती है चूंकि यथार्थ से परिचय हो जाता है जिसे मन स्वीकार नहीं करना चाहता। साहित्य की विद्यार्थी होने के कारण मेरे भीतर भी ऐसे ही प्रेम की भावना जागृत होती है, अनेक कल्पनाएँ जन्म लेती हैं। कालिदास और मल्लिका की कहानी को पढ़कर मन में ऐसे ही भाव आते हैं कि काश सचमुच दुनिया में ऐसा ही प्रेम होता, परन्तु अंत पढ़ते ही सारी कल्पनाएँ, सारी भावनाएँ कहीं गायब हो जाती हैं और मन विचलित हो जाता है। मल्लिका जैसी अल्हड़, बेफिक्र और भाव को सर्वोपरि रखने वाली लड़की कैसे परिस्थितियों से समझौता कर लेती है और एक ऐसे व्यक्ति से विवाह करती है, जिससे वह लगभग घृणा करती थी।
मन में सवाल उभरते हैं कि क्यों नहीं मल्लिका जब कालिदास से उज्जयिनी जाने

की ज़िद कर रही थी तो कालिदास ने क्यों नहीं कहा कि - 'तुम भी चलो मेरे साथ'। या क्यों नहीं मल्लिका ने अपनी माँ की बात मान ली थी जो हर वक्त उसकी चिन्ता करती रहती थी और दुखी होती थी। दुख उस दुखियारी माँ के लिए भी होता है जो आजीवन बेटी के ब्याह और उसके भविष्य के लिए व्यथित रही, पर उसकी इच्छा पूरी न हो सकी।

इस नाटक को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है सिर्फ भावना ही ज़िंदगी नहीं होती। मनुष्य को यथार्थ में जीना चाहिए। भौतिक आवश्यकताओं का भी जीवन में बेहद महत्त्व है और यदि सचमुच इन सबसे ऊपर उठना है तो वह साधु-सँन्यासी बन जाएं क्योंकि यदि साधारण जीवन जीते हुए आप भावनाओं में डूबे रहे तो स्थिति सचमुच अत्यंत दयनीय हो सकती है। सचमुच अति भावुकता भयावह है।

• आकृति सिंह राठौर
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

इश्क की एक अलग दास्तां

लघु फिल्म समीक्षा

स्वाति श्रीवास्तव के निर्देशन में बनी फिल्म 'एक दोपहर' प्रेम के एक अलग रूप को दर्शाती है। इस लघु फिल्म में मुख्य भूमिका निभायी है गौहर खान और हुमा कुरैशी ने। जीवन में प्रेम के संदर्भ सभी के लिए अलग-अलग हैं लेकिन एक बिन्दु पर आकर शायद सभी के लिए प्रेम की अवधारणा एक ही हो जाती है, यदि वह प्रेम अपने स्वाभाविक रूप में मौजूद हो तो।

फिल्म का आरंभ रैना (हुमा कुरैशी) की अपनी बहन से फ़ोन पर बातचीत से होता है, रैना अपने किसी काम के सिलसिले में मुंबई जाने की बात अपनी बहन को बताती है, तभी एक प्रश्न के रूप में उसकी बहन पूछती है - 'मुंबई इतने सालों बाद, विधु (अभिनव शर्मा) से मिलोगी?' रैना उससे कहती है - 'शायद हाँ।' पीछे छूटा हुआ प्रेम कभी छूटता

ही नहीं है, वह साये की तरह हमारे पीछे जीवन भर रहता है। रैना, विपु को ईमेल करती है और उसके उत्तर का इंतज़ार बड़ी तत्परता से करती है, कुछ समय बाद विपु का रिप्लाई आता है। कुछ छूटे हुए को दोबारा जीने की लालसा रैना के मन में एक अलग प्रसन्नता और अहसास उत्पन्न कर देती है।

फिल्म की कहानी एक नया मोड़ ले ती है। रैना जब विपु के घर जाती है तब शुभा विपु की पत्नी (गौहर खान) बड़े आदर के साथ रैना का स्वागत करती है। धीरे-धीरे बात-चीत में रैना अपने और विपु के पुराने किस्से और शुभा अपने और विपु के नए किस्सों को एक-दूसरे के साथ साझा करती हैं। अतीत जब वर्तमान में झांकता है तब वह अपने किस्से को और सुंदर बना देता है। उसी बातचीत में रैना को यह पता चलता है कि विपु की सात महीने ही मृत्यु हो चुकी है, पर उसे शुभा की बातों पर विश्वास नहीं होता पर सच को तो बदला या झुठलाया नहीं जा सकता। जब रैना शुभा को वो ईमेल दिखाती है, तब शुभा से उसे पता चलता है कि वो ईमेल शुभा ने ही उसे किया था और यह बात पता चलने पर रैना, शुभा पर नाराज़ होती है।

शुभा उसे बताती है कि वह विपु की हर चीज़ को जीवित रखना चाहती है, प्रेम यही होता है। किसी के चले जाने के बाद प्रेम की मृत्यु नहीं होती। प्रेम शाश्वत है, प्रेम हमारे जीवन को विस्तार देता है, उसे अन्त की ओर नहीं ले जाता। शुभा और रैना ने प्रेम को भिन्न तरीके से जिया। रैना की जिंदगी से जब विपु गया, क्योंकि उन दोनों के सपने अलग थे

तब रैना उस प्रेम को सहेज कर नहीं रख पायी जबकि शुभा ने उस प्रेम को जीवित रखा। प्रेम हमारे अस्तित्व का साक्षी है, किसी घाट पर बैठे बहते नीर को देखते हुए यही लगता है कि जीवन भी ऐसे ही बीत जाता है। शाम को पक्षी अपने-अपने घर लौट आते हैं पर यादों के सहारे हम वर्तमान में रहते हुए भी उस शाम में उस बहते नीर में अपने अतीत को खोज लेते हैं, स्मृतियाँ इस तरह प्रेम को जीवित रखने का साधन है। रैना, शुभा से कहती है कि 'एक दोपहर' में तुमने मेरी जिन्दगी, मेरा दृष्टिकोण बदल दिया।

तुम और मैं
जीवन के क्षण-क्षण की कहानी है,
हर क्षण में तुम और मैं समाहित हैं
मृत्यु ने छीन लिया तुम्हें भले ही
पर मृत्यु क्या उस क्षण को
छीन सकती है
जो जीवन में समाहित हो चुका है!

• निहारिका शर्मा
(पूर्व छात्रा, मिरांडा हाउस)

अतीत के पन्नों से स्त्री दास्ताँ

लघु फिल्म समीक्षा

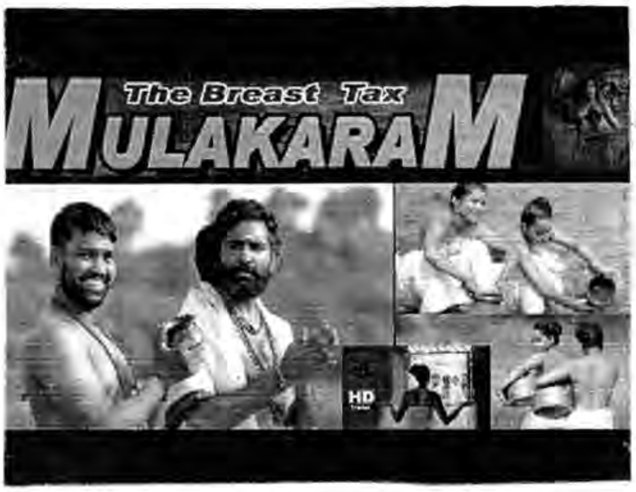

योगेश पगारे द्वारा लिखित एवं निर्देशित फिल्म 'मुलकरम' यानि ब्रेस्ट टैक्स (स्तन कर) हमारे समाज की निंदा-जनक कुरीति को प्रदर्शित करती है। यह कर त्रावणकोर राज्य (वर्तमान केरल) में निम्न जाति की अछूत हिन्दू महिलाओं पर लगाया जाता था। क्योंकि उन्हें अपने स्तनों को ढकने की इजाजत नहीं थी। यदि ये महिलाएँ ऊँची जाति की स्त्रियों की तरह स्तन ढकने का दुस्साहस करती थी तो उन्हें 'मुलकरम' देना पड़ता था।

यह लघु फिल्म इतिहास के पन्नों पर शोध करने और कुछ ऐसे नामों को खोजने के लिए प्रेरित करती है जो समाज के आक्रामक दृष्टिकोण में बड़े बदलाव के लिए जिम्मेदार थे। पन्द्रह मिनट की यह फिल्म एक अद्भुत पटकथा, संवादों और दृश्यों के साथ एक कहानी प्रस्तुत करती है। दिल को छू लेने वाली यह सच्ची कहानी एक बहादुर स्त्री 'नंगेली' की है, जिसने इस अमानवीय कर 'स्तन कर' के खिलाफ

आवाज उठायी। नंगेली ने इस कुप्रथा का विरोध करते हुए अपने स्तन ढकने शुरु कर दिए। बहुत जल्दी ही यह बात फैल गयी और उसके घर स्तन कर वसूलने का फरमान आ गया। लेकिन संघर्षशील नंगेली हार मानने वाली नहीं थी। उसने इस कुप्रथा का विरोध किया और स्तन ढकने के अपने तथाकथित जुर्म के कर (टैक्स) के रूप में अपने स्तन ही काटकर दे दिए। नंगेली की ज्यादा रक्त बह जाने के कारण मृत्यु हो गयी। नंगेली के पति चिरकंदन ने पत्नी की चिता में जलकर आत्मदाह कर लिया। चिरकंदन पहले ऐसे व्यक्ति माने जाते है, जो अपनी पत्नी के लिए 'सती' हो गए थे। नंगेली और उसके पति की इस शहादत के बाद गाँव के कई लोग इस अमानवीय ब्रेस्ट टैक्स के खिलाफ खड़े हुए। जनता के विरोध प्रदर्शन के बाद आखिरकार इस टैक्स को हटाना पड़ा।

अधिकारियों का 'मुलक्करम' वसूलने के पीछे जो कारण दिखलाई देता है वह यह कि स्तनों के आकार का विश्लेषण करने पर राशि तय की जाती थी। नारीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह समाज की उच्च जातियों के पुरुषों की आनंद क्रीड़ा के लिए था जो आमतौर पर इस कर को एकत्रित करने के लिए आते थे। यह लघु फिल्म त्रावनकोर साम्राज्य की कहानियों के बारे में विस्तृत शोध के लिए प्रेरित करती हैं। फिल्म निर्देशक ने अपनी कसी हुई पटकथा द्वारा दर्शकों को सोचने पर विवश किया है। फिल्म में दर्शाया गया है कि अगर नंगेली ऐसा साहस न करती और स्वयं भी अपनी सहेली की

भाँति उसे अपना भाग्य समझकर स्वीकारती रहती तो यकीनन पूरा देश इस क्रूर परम्परा के अत्याचारों के अधीन होता।

यह ऐसा समकालीन क्लासिक है जो अवश्य देखने योग्य है। क्योंकि इस साहस को भी सराहना होनी आवश्यक है, नंगेली जैसी साहसी स्त्री के इस बलिदान को हम कहीं भी चर्चित रूप में नहीं पाते, शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि समाज में स्त्रियों के बलिदान की गणना न के बराबर हुई है। यह फिल्म अमानवीय टैक्स प्रथा के साथ-साथ जातिगत भेदभाव के क्रूर रूप से भी हमारा परिचय कराती है जिसका शिकार केवल निम्न जाति की स्त्रियों को बनाया जाता था। यह लघु फिल्म एक साथ कई सामाजिक कुरीतियों को तो दर्शाती ही है, साथ ही नंगेली के अमर बलिदान की भी याद दिलाती है, जिससे समाज अनजान है।

• अनुष्का यादव
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)

Campus
आस पास

पर्यावरण की चिन्ता

पर्यावरण की चिन्ता आखिर क्यों दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इसका समाधान क्या है? देखिए जिस तरह से हमारा शरीर किसी बीमारी को लेकर तनाव में आ जाता है और हम सोचने लगते हैं कि अगर हम इस बीमारी से ठीक नहीं हुए तो आगे चलकर भविष्य में क्या होगा? उसी तरह से पर्यावरण में भी अनेक तरह की समस्याएँ है जैसे प्रदूषण बढ़ रहा है, जलवायु बदल रही है, शहरीकरण बढ़ रहा है, वनों को काटा जा रहा है, दिन-प्रतिदिन ऑक्सीजन की कमी हो रही है जिससे खतरा बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण, जीवजन्तु एवं मानव के लिए पर्यावरण की इन सभी समस्याओं को लेकर मनुष्य बहुत चिन्तित है। हम सब जानते हैं कि ये समस्याएँ हमने ही उत्पन्न की है। परन्तु आज यह समस्याएँ बहुत बढ़ रही हैं। अगर हम सभी मिलकर इन चुनौतियों का समाधान ढूंढे तो अवश्य ही ये समस्याएँ नियन्त्रित हो सकती हैं।

पर्यावरण में जितनी भी समस्याएँ बढ़ रही हैं उसका सीधा प्रभाव मनुष्य और मनुष्येतर समाज पर पड़ रहा है। अनेक जीव जन्तु प्रभावित हो रहे हैं। अनेक तरह की बीमारियाँ फैल रही हैं। हम सभी ये सोचकर अपने को मजबूर महसूस कर रहे हैं कि पर्यावरण समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। इसका समाधान कैसे किया जायें भविष्य को कैसे बचाया और सुधारा जायें इससे ही पर्यावरण की चिन्ता (Eco-Anxiety) बढ़ रही है।

कई लोग इन समस्याओं को लेकर बहुत तनाव में रहते हैं तो बहुत से लोग लापरवाह। कुछ ये सोचते हैं जैसा चल रहा है, वैसे ही जीते रहेंगे। हम कर ही क्या सकते हैं? परन्तु यह सोच सही नहीं है अगर यह सब इसी तरह चलता रहा तो पृथ्वी पर भावी-पीढ़ियों के लिए खतरा बढ़ता जाएगा। - और इसके दोषी हम ही होंगे। परन्तु सोचने का विषय यही है कि जरूरी नहीं हम इस समस्या को लेकर तनाव में चले जाएं परन्तु यह अवश्य सोचना चाहिए कि पृथ्वी को बचाया कैसे जाए? यह भी सच है अगर पर्यावरण की समस्याओं का तनाव किसी को लम्बे समय तक हो रहा है तो वह बीमारी का रूप ले सकता है।

पर्यावरण की चिन्ता (Eco-Anxiety) के लिए कुछ उपाय अवश्य हैं जिनका हम सबको ध्यान रखना चाहिए। जैसे - पर्यावरण को सुधारने हेतु जो ज्ञान, जानकारी हम पढ़ रहे हैं या हम स्वयं जानते हैं, उनका पालन अवश्य करें। पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं और चिन्ताओं को लेकर मित्रों और परिचितों से संवाद करें और जागरूकता फैलाएं। अपनी दिनचर्या, अपनी सोच, अपने व्यवहार और आदतों में बदलाव लाएं। सच है, छोटे-छोटे प्रयास बड़ा बदलाव ला सकते हैं। हम System या व्यवस्था को बदलने के बजाय स्वयं को बदलें और यह सोचें कि हमारे योगदान से अवश्य बदलाव होगा। यह सकारात्मक सोच अन्यों में भी पैदा करें। 'हरियाली' को बचाने का प्रयास करें। बदलती चुनौतियों का समाधान सोचें ही नहीं करें भी। अगर हम इस Eco-Anxiety

की समस्या को कम करना चाहते हैं तो आंकड़ों पर नज़र न डालें, भय या दहशत न फैलायें और न स्वयं डरें। बल्कि स्थितियाँ कैसे बदल सकती हैं हम क्या-क्या प्रयास कर सकते हैं उस पर ध्यान दें जिससे हम दुनिया में बेहतर पर्यावरण सृजित कर सकें। निश्चित ही इसके लिए हमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक प्रयास करने होंगे तभी हम इस चिन्ता से मुक्त होकर इस धरा को सुन्दर और रहने लायक बना सकेंगे।

• दीप्ति चौधरी
(भूगोल विशेष, द्वितीय वर्ष)
शहीद भगत सिंह महाविद्यालय
सांध्य

स्त्रियाँ

मुझे लगता है
स्त्रियाँ कमजोर नहीं हैं
ना ही उनको किसी
सहारे की जरूरत है
जरूरत है तो बस
अपने आप पर
विश्वास बनाए रखने की

जब एक स्त्री
समाज को समझती है
तो उसके भीतर
एक बीज उपजता है

वह देखती है किसी पर
अत्याचार होते हुए
तो वह इस समाज के
नियमों, रूढ़ियों को
ठुकराती है
जब कोई उसको
दबाने का प्रयास
करता है
वह बुलन्द हो
अपनी आवाज उठाती है

अपने हक के लिए
सबसे लड़ती है
छोटा सा अंकुर
क्रांति बन जाता है

इसी क्रांति से आंदोलन
होता है
और वह तब
समाज में खुद के लिए
जगह बनाती है

स्त्रियाँ कमजोर नहीं हैं
बस क्रांति का बीज
बोने की जरूरत है।

• मंजु दाहाल
(हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष)
आर्यभट्ट महाविद्यालय

साहित्यिक गतिविधियाँ

मिरांडा हाउस का हिंदी विभाग अपनी रचनात्मकता, क्रिया-शीलता एवं साहित्यिक गतिविधियों के लिए जाना जाता है विभाग प्रतिवर्ष छात्राओं की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचियों को समृद्ध करने हेतु उससे सम्बद्ध अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करता है। पिछले वर्ष कोरोना जैसी वैश्विक महामारी ने शिक्षा, व्यवसाय एवं मनोरंजन की तस्वीर ही बदल दी। भला किसने सोचा था कि छात्राओं और प्राध्यापिकाओं के परस्पर सहयोग, उत्साह व आनंद के साथ आयोजित किए जाने वाले साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम एक स्क्रीन के सहारे आयोजित किए जाएंगे। सेमिनारों ने वेबिनारों का रूप ले लिया और सभी कार्यक्रमों को online आयोजित किया गया छात्राओं का सहयोग और सक्रियता यहाँ भी सराहनीय रही।

महाविद्यालय एवं विभाग द्वारा 18 नवम्बर 2020 को प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों के लिए ओरिएण्टेशन कार्यक्रम आयोजित किया गया। जिसमें प्राध्यापिकाओं द्वारा उन्हें उनके पाठ्यक्रम एवं विभागीय गतिविधियों की विस्तृत जानकारी दी गयी।

4 फरवरी 2021 को 'एक मुलाकात' शृंखला के अन्तर्गत कवि व गद्यकार राजेश जोशी को 'रचनाकार और उसका समय' विषय पर उनके वक्तव्य के लिए आमंत्रित किया गया। कवि राजेश जोशी ने

अपने समय और समाज की नयी चुनौतियों, विसंगतियों, जटिलताओं एवं बदलते जीवनमूल्यों के बीच रचनाकार के दायित्व और उसकी भूमिका पर सारगर्भित वक्तव्य दिया। साथ ही श्रोताओं के विविध प्रश्नों यथा- उनके रचनाकर्म की प्रेरणा, राजनैतिक तंत्र से जूझते मनुष्य, किसानों व स्त्रियों की पीड़ा, बढ़ती असामंजस्यता तथा नए कवियों के लिए संदेश आदि पर उन्होंने बहुत ही स्नेहिल व आत्मीय ढंग से अपने विचार रखे। इसके अतिरिक्त उन्होंने इस अवसर पर अपनी कुछ चुनिंदा कविताओं का पाठ भी किया।

11 फरवरी 2021 को चर्चित रंगकर्मी हेमा सिंह को 'एक व्याख्यान: पारसी रंगमंच कल और आज' विषय पर वक्तव्य के लिए आमंत्रित किया गया। हेमा जी ने पारसी रंगमंच के स्वरूप, इतिहास एवं उसकी यात्रा पर रोचक वक्तव्य देते हुए समाज, संस्कृति व राष्ट्रीयता से उसके अन्तर्संबंधों पर प्रकाश डाला। पारसी रंगमंच की कुछ प्रमुख विशेषताओं - संगीत, नृत्य व गायन का उपयोग, वस्त्र सज्जा, संवाद अदायगी आदि पर भी विस्तार से चर्चा की। इस अवसर पर उन्होंने विभिन्न नाटकों के संवादों का वाचिक अभिनय प्रस्तुत कर पारसी रंगमंच कला का जीवन्त रूप हम सबके सम्मुख उपस्थित किया। साथ ही एक चित्र श्रृंखला की विस्तृत प्रस्तुति देकर श्रोताओं को पारसी रंगमंच से रूबरू कराया। यह आयोजन एक समृद्ध आयोजन रहा।

15 अप्रैल 2021 को वार्षिक साहित्योत्सव

कराए जाने की योजना है। जिसमें प्रो० नित्यानंद तिवारी को कविवर निराला पर उनके वक्तव्य के लिए आमंत्रित किया जाएगा तथा छात्राओं के लिए आयोजित विविध प्रतियोगिताओं के अन्तर्गत इस बार 'सोशल मीडिया का जीवन और समाज पर प्रभाव' विषय पर पॉवर पॉइन्ट प्रेजेंटेशन तथा वाचिक अभिनय प्रतियोगिता में 'ध्रुव स्वामिनी' नाटक तथा 'तीसरी कसम' कहानी के अंशों को प्रस्तुति के लिए चुना गया है। ये प्रतियोगिताएँ अन्तर्महाविद्यालयी स्तर पर आयोजित की जाती हैं।

इन सभी कार्यक्रमों को सफल बनाने में छात्राओं की विशेष भूमिका के साथ-साथ विभाग की सभी प्राध्यापिकाओं का सक्रिय योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है।

साहित्य संसार

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी कुछ चर्चित एवं युवा साहित्यकारों को विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। सभी साहित्यकारों को हार्दिक बधाई !!

वर्ष 2019 का व्यास सम्मान सुप्रसिद्ध लेखिका नासिरा शर्मा को उनकी कृति 'कागज की नाव' के लिए प्रदान किया गया तो वर्ष 2020 का व्यास सम्मान लेखक शरद पगारे को उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'पाटलीपुत्र की सम्राज्ञी' के लिए देने की घोषणा की गयी। शरद पगारे सफल कथाकार होने के साथ-साथ इतिहास के विद्वान और शोधकर्ता भी हैं।

वर्ष 2020 का साहित्य अकादमी पुरस्कार हिंदी में सुप्रसिद्ध कवयित्री अनामिका को उनकी काव्य रचना 'टोकरी में दिगन्त : थेरी गाथा' के लिए दिया गया। अनामिका हिंदी की पहली स्त्री रचनाकार हैं, जिन्हें यह पुरस्कार दिया गया है। साहित्य अकादमी का युवा पुरस्कार हिंदी में आलोचना के लिए अंकित नरवाल को उनकी पुस्तक 'यू.आर. अनन्तमूर्ति - प्रतिरोध का विकल्प' के लिए दिया गया।

वर्ष 2019 का उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान की ओर से दिया जाने वाला भारत भारती पुरस्कार डॉ. सूर्यबाला को दिया गया। समाज, जीवन, परम्परा, आधुनिकता एवं उससे जुड़ी समस्याओं को

लेखिका एक खुली, मुक्त और नितान्त अपनी दृष्टि से देखने की कोशिश करती है।

दिल्ली सरकार की हिंदी अकादमी द्वारा दिया जाने वाला शलाका सम्मान सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी को दिया गया तो डॉ. निर्मला जैन को संतोष कोली पुरस्कार एवं डॉ. श्योराज सिंह बेचैन को गद्य विधा सम्मान दिया गया।

25 वाँ देवी शंकर अवस्थी स्मृति सम्मान युवा लेखक और आलोचक राहुल सिंह को उनकी पुस्तक 'विचार और आलोचना' के लिए प्रदान किया गया।

बिहार की कवयित्री अनामिका अनु को वर्ष 2020 का भारत भूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार उनकी कविता 'माँ अकेली रह गयी' के लिए दिया गया। यह कविता 2019 में कथादेश पत्रिका में प्रकाशित हुई थी।

वर्ष 2019-20 में साहित्य जगत में बहुत से रचनाकार हमसे विदा हो गए। इनमें रंगकर्मी उषा गांगुली, नंद किशोर नवल, जनपक्षधर कवि, कथाकार एवं आलोचक विष्णुचन्द्र शर्मा, लोक विषयों व स्त्री विषयक मामलों की चर्चित लेखिका मृदुला सिन्हा, उर्दू शायर व गीतकार राहत इन्दौरी, उर्दू के आधुनिकतावादी रचनाकार शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी तथा कवि और लेखक मंगलेश डबराल शामिल हैं। इन सभी को हमारी भावभीनी श्रद्धांजलि!!

प्रेम में ही संभव है करना
हर सरहद पार !
प्रेम से भी बड़ी हैं प्रेम की
कहानियाँ,
प्रेम के या खुदा के बारे में
सबसे
खूबसूरत बात ये ही है :
आदमी ने गढ़ा उनको था
उन्होंने आदमी को –
ताल ठोंककर आप
कह ही नहीं सकते ।
जिसने भी जिसको गढ़ा हो
– इससे क्या !
कल्पना ही यह सुंदर है कि
कुछ तो गढ़ा जाए,
कुछ तो हो...

(अनामिका
– टोकरी में दिगन्त)